रामाश्रम सत्संग (रजि०) प्रकाशन

संत-प्रसादी

(भाग-४)

परम संत डॉक्टर करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि०)

गाजियाबाद (उ०प्र०)

विषय सूची

क्रम सं.

1. सेवा
2. त्याग , दीनता, समर्पण ।
3. अभ्यास और वैराग्य
4. दिनचर्या कैसी हो
5. तीन बंद लगाकर अंतर में घूंसे ।
6. साधनका कब लाभ होता है ।
7. अच्छाई-बुराई से मन को स्वतंत्र करो ।
8. अंत:स्थल को सुंदर बनाओ

दो शब्द

पूज्य भाई साहब परम संत डा० करतार सिंह साहब के प्रवचनों का चौथा भाग प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत करने में मेरा सौभाग्य है उनका बार बार आदेश यही है की अहंकार का त्याग क्र के दीनता अपनाएँ । यह कैसे सम्भव है आइये उनके प्रवचनों में पढें ।

गाजियाबाद

दि०-१०-०२-१९८९ ई०

दासानुदास--

महेश चंद्र

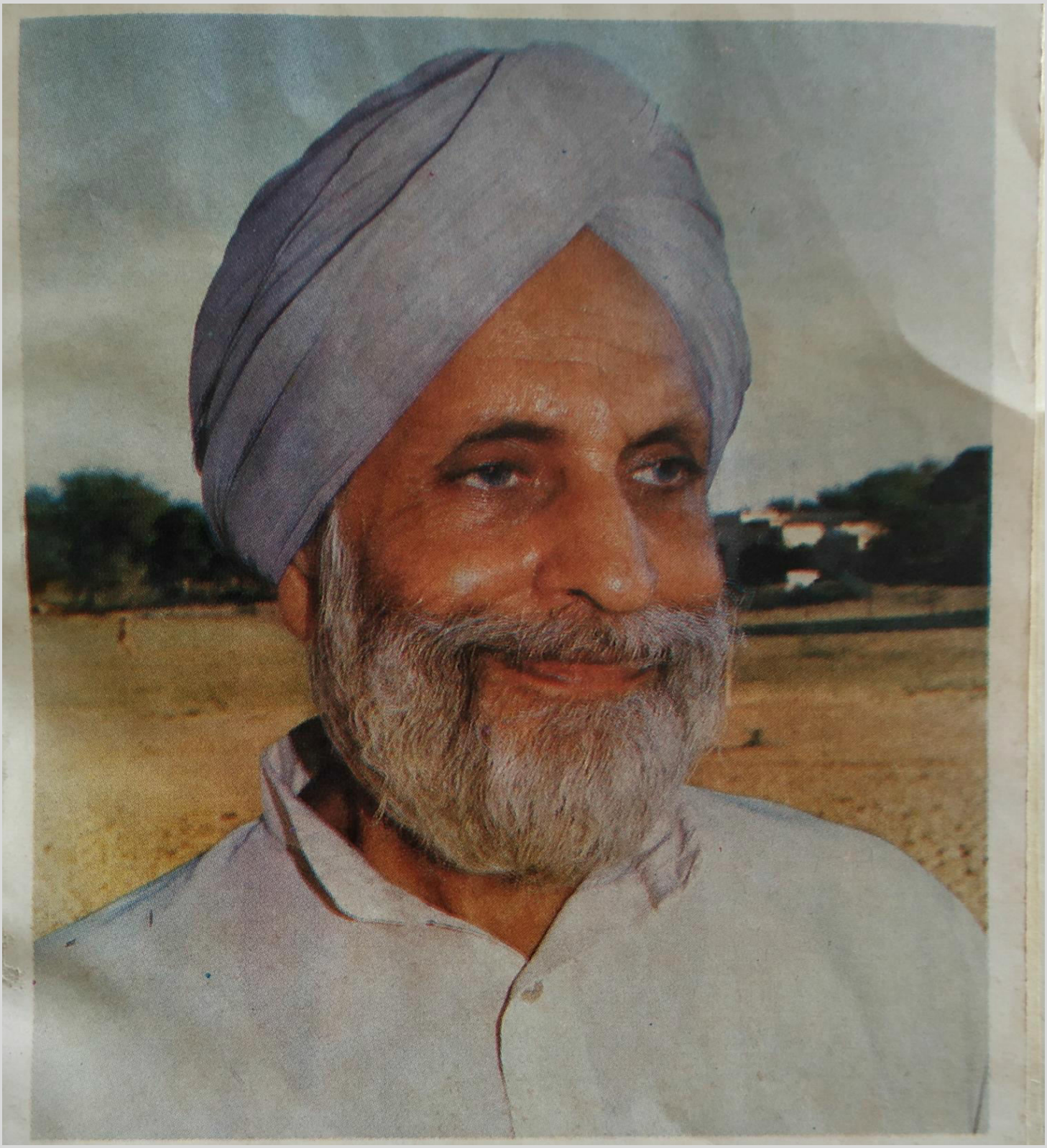

" अहंकार से प्रभु नहीं मिलते । चाहे कोई भी साधन करिए, दीनता को तो अपनाना हीं होगा "।

परम संत डॉ० करतार सिंह जी (भाई साहब)

सेवा

गाजियाबाद, दि० ८-१-८४

अंग्रेजी में कहते हैं "Service Leads us near to God" सेवा करने से हम ईश्वर के समीप हो जाते हैं। गुरु नानक देव कहते हैं कि ईश्वर के चरणों में भी वही व्यक्ति स्वीकार होगा जो सेवा का जीवन व्यतीत करेगा। भगवान कृष्ण गीता में समझाते हैं कि हमारा पूर्ण जीवन सेवा का रूप बन जाये अर्थात ईश्वर में लय होकर कर्मक्षेत्र में जूझे। वो भी कर्म करें हाथ पांव से, मन से, juba न से दूसरे के हित में हो, दूसरे की प्रसन्नता के लिए हो, तथा उस कर्म तथा कर्म फल के साथ कोई आसक्ति न हो। हम किसी प्रकार की आशा न रखें। पूजा के रूप में, सेवा के रूप में, आराधना के रूप में, ईश्वर जैसे स्वयं ही आया हुआ हो, प्रत्येक काम हम उसकी सेवा समझ कर करते रहे। सब पढ़ते हैं, जानते भी है, कि हमारी वृत्तियाँ हमारे संस्कार ऐसे है कि हम जो भी काम करते हैं, आशा रख कर, इच्छा रख कर और अपने लाभ को सम्मुख रखकर ही करते हैं। ऐसा व्यक्ति चाहे जितने समय तक भी साधना करता रहे उसको फल तो मिलेगा क्योंकि प्रत्येक कर्म का फल होता है परंतु उसको दरगाह (ईश्वर के दरबार में) प्रवेश नहीं मिलेगा। गुरु नानक देव जी कहते हैं कि उस व्यक्ति को ईश्वर के चरणों की समीपता, ईश्वर के चरणों का प्रेम प्राप्त नहीं होगा। यह जीवन मिला है ईश्वर प्राप्ति के लिए। गुरुदेव कहते हैं कि एक क्षण के लिए वह नाम मिल जाए यानी ईश्वर का प्रेम मिल जाए ईश्वर का आशीर्वाद मिल जाए, ईश्वर हमें अपने चरणों में एक क्षण के लिए लगा ले तो हमारे जीवन में पूर्ण क्रांति आ जाएगी। आप कहेंगे ईश्वर इतना कठोर दिल है कि हम सारे जीवन काम करते रहते हैं और वह प्रसन्न नहीं होता। ईश्वर तो चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके रूप जैसा ही बन जाए, वैसा ही बन जाए जैसा वह स्वयं है। परन्तु मनुष्य ही वैसा नहीं बनना चाहता। आदिकाल से ही मनुष्य की वृत्ति प्रतिकूलता की ओर जाती रही है और भविष्य में भी जाती रहेगी। ईश्वर की या सदगुरु की कृपा जिस पर होती है वही इस रास्ते पर चलता है। बिना ईश्वर की कृपा के इस रास्ते पर नहीं चल सकता और और बिना रास्ता चले ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसके लिए ईश्वर या संतों की कृपा अति आवश्यक है। क्या सतगुरु या ईश्वर की कृपा किसी अन्याय पर आधारित है। नहीं, ईश्वर तो न्याय स्वरूप है न्यायकारी है। वही बात आ जाती है कि कमी हमारे में होती है। भगवान कृष्ण के चरणों में कितने

व्यक्ति रहे, परंतु उनमें से कितनों का उद्धार हुआ ? गुरु नानक देव के साथ कितने व्यक्ति रहे, कितनों का उद्धार हुआ ? केवल दर्शन से या केवल शारीरिक तौर से पास रहने से ही कुछ नहीं होता । हजारों लाखों लोग भगवान कृष्ण के पास रहे कौरव रहे, पांडव रहे, और कई अन्य पुरुष रहे । उनकी कृपा, उनका प्रेम, किन को मिला, केवल गोपियों को । शारीरिक तौर से पास रहने से कोई विशेष लाभ नहीं होता । जब तक व्यक्ति सतगुरु या परमात्मा के चरणों में मन से नहीं रहता है, उनको विशेष लाभ नहीं होता है । हम तकनीकी तौर पर किताब पढ़ लेते हैं कुछ समझ भी लेते हैं परन्तु वह ईश्वर के चरणों में रहना नहीं है । गुरु महाराज की सेवा में हम कितने समय रहे, किसका उद्धार हुआ अपने जीवन के अंतिम दिनों में खुलासा उन्होंने फरमाया था कि जैसा हम बनना चाहते थे वैसा एक भी तो व्यक्ति नहीं बन सका । यह खेद रहा हमारे जीवन में । हमने उनका कहा नहीं माना ।

सेवा के तीन अर्थ है, तीन रूप है । हाथ पांव से सेवा करना अच्छा है, पैसे से सेवा करना उससे कम कम दर्जा रखती है । लालाजी परमसंत महात्मा रामचंद्र जी) के मुखारविंद से निकले हुए शब्द यह है कि जो गुरु के आदेशों के अनुसार चलता है और अपना जीवन बनाता है तन, मन, धन उसी का समझते हुए उसी के आदेशों के अनुसार चलता है वह सच्ची सेवा करता है । हमारे यहाँ आँखें बंद करके बैठ जाने वाले (साधना करने) पर विशेष महत्व नहीं है, लोग इसको गलत समझते हैं । कोई कहता है मेरा मन नहीं लगता, कोई कहता है मेरा बच्चा बीमार है । यह सब बातें बाहरी हैं, फिजूल की है । वास्विकता यह है कि यह मन कोमल बनना चाहिए । इसमें करुणा उत्पन्न होनी चाहिए, इसमें प्रेम उत्पन्न होना चाहिए इसमें दया उत्पन्न होनी चाहिए और बिना सेवा के यह गुण नहीं उत्पन्न हो सकते । साधना करने को मैं बुरा नही कहता यह अच्छी चीज है साधना करना, ईश्वर का नाम जितना भी लें, उतना हीं थोड़ा है परन्तु नाम लेते यदि अब हम अभिमानी हो जाते हैं, हठी हो जाते हैं, हम ईर्ष्या रखते हैं, द्वेष रखते हैं, तो यह नाम लेना नहीं है । इसलिए जितने भी पर महापुरुष हुए हैं आज तक और आगे भी होंगे सब ने सेवा को ही आधार बनाया है सेवा को ही मुख्य माना है । मैं भी पहले समझता था कि शायद सुबह शाम पूजा पर बैठने से ही ज्यादा लाभ होता है परन्तु अब महसूस करते हैं कि वह गलती थी । एक महापुरुष ने मुझसे पूछा कि क्या आपने गुरु महाराज के हाथ पांव से सेवा की ? हमने कहा कि साहब वो तो हमसे सेवा लेते नहीं थे । एक दो और प्रश्न किए, मुख्य प्रश्न यही था । जो व्यक्ति हाथ पांव से सेवा नहीं करता है संभावना है कि वह कोरा रह जाएगा । कोरा रहने का मतलब है कि उसके भीतर में सच्ची दीनता नहीं

आएगी, कोमलता नहीं आएगी, जिसके भीतर में दुखी जीवों की प्रति दया और करुणा उत्पन्न नहीं होती है वह भले ही आँखें बंद करके बैठा रहे, फरीद जी की तरह उसके अंदर अहंकार उत्पन्न हो जाता है । रावण को आप क्या समझते हैं ? कोई काम साधना की थी परंतु उसमें कठोरता थी, इसलिए लोग बाग कभी-कभी प्रश्न भी करते हैं कि अमुक व्यक्ति है, सत्संग में उनको इतने साल हो गए पर अभी तक भी क्रोध आता है । उसका कहना सही है । साधना में कमी है । साधना के साथ अपने जीवन में सेवा को मुख्य नहीं रखा है । सेवा भी दर्जे-ब-दर्जे बढ़ती चली जाती है । पहले माता की सेवा करते हैं, फिर अध्यापक की करते हैं और जब गुरु की सेवा में आते हैं तो संसार की सेवा गुरु रूप समझ कर, ईश्वर रूप समझ कर करते हैं । गुरु महाराज के जीवन में देखिये । डॉक्टरी का व्यवसाय है । दस-दस पंद्रह-पंद्रह दिन घर छोड़कर चले जाते हैं, कहाँ ? भाई बहनों की सेवा करने के लिए दिल्ली में, अस्पतालों में, गर्मियों में, बरामदे में बैठे हैं, घास के बैठे है, धुप पड़ रही है परन्तु अगर डॉक्टर ने कह दिया कि अभी ८ दिन लगेंगे तो बैठे है वही । वही खाना आदि खाते थे । अपना व्यवसाय खराब होता है । डॉक्टर अगर प्रैक्टिस छोड़कर आठ दिन के लिए चला जाये तो प्रैक्टिस खत्म सी हो जाती है । उन्हें इसकी चिंता नहीं थी । मुख्य ध्येय मन में यही रहता था कि जिस मरीज को साथ में लाएं हैं उसका दुःख दूर हो जाए । उदाहरण देना ठीक नहीं है । यहां भी लोग बैठे हैं जिनके पास गुरु महाराज (परम संत महात्मा श्री कृष्ण लाल जी) जाते थे, निष्काम भाव से, पैसा अपने पास से खर्च करना, दवाई का पैसा भी अपने पास से, रास्ते में खाने पीने का भी खर्चा अपने पास से, मरीजों को अपने खर्चे से लाना ले जाना ।

अपने जीवन को का साधना रूप बनाना है और सर्वोत्तम सेवा यही है कि गुरु महाराज के आदेशों का बिना किसी संकोच के पालन करना । यह कहना कि परिस्थितियां ऐसी थी उन्होंने ऐसा कहा था, अब वो परिस्थितियां नहीं है, अब ऐसा कर लें, तो क्या हर्जा है, यह मन की सेवा है, यह गुरु की सेवा नहीं है । तीसरे सिख गुरु, गुरु अमरदास जी जो कि सेवा के पुंज थे, उनका जब अंतिम समय आया, अपनी जगह उत्तराधिकारी नियुक्त करने का तो आदेश दिया अपने मुख्य सेवक को की एक चबूतरा बनाया जाए, यह भी कहा कि अपने हाथ से बनाना है, तो जो दस पन्द्रह आदमी मुख्य थे, उन्होंने अलग अलग चबूतरा बनाया शाम को गुरु महाराज आये, ऐसा नही, ऐसा होना चाहिए । तोड़ा गया फिर बनाया गया । इस तरह चार पांच दिन हो गए । उनमें से कुछ कहने लगे (उस समय गुरु महाराज के आयु ९५ - ९६ वर्ष की थी) गुरु महाराज को न जाने क्या हो गया है, बहुत अच्छी तरह से हम चबूतरा बनाते हैं, बहुत

सुन्दर लगता है पता नहीं कि किस कारण से कह देते हैं कि तोड़ दो । धीरे धीरे एक-एक करके सब छोड़ते गए । कोई कहता है कि उम्र बड़ी हो गई है अब ऐसी ही बातें करते हैं । अंत में केवल एक व्यक्ति रह गया । शाम को आए, वह चबूतरा तुडवा दिया । एक ही शिष्य रह गया था उसने फिर बनाया है । शाम को आए, उसको आशीर्वाद दिया । चबूतरा अच्छा बना है या बुरा बना है यह जिज्ञासु का काम नहीं है । गुरु हमारे मन की बात जानता है कि हमारे अंदर आज्ञा पालन का गुण आ गया है या नहीं । जब तक हम स्वयं गुरु की आज्ञा पालन नहीं करेंगे हम दूसरों से कैसे आशा रख सकते हैं कि वह हमारे आज्ञा का पालन करेंगे ।

तो अति विस्तार से न कहता हुआ शक्ति बाबू को मैं मुबारक बाद देता हूँ हमारे यहां रियायत है कि जो गुरु के आदेश के अनुसार चलता है उसको दीन (परलोक) भी बनता है और उसकी दुनिया भी बनती है । पूज्य लाल जी महाराज को किसी व्यक्ति ने पूज्य गुरू महाराज के विषय में एक पत्र लिखा कि यह तो पारिवारिक जीवन में ही फंसे रहते हैं या आपके कैसे लाड़ले बेटे हैं । "अमृतरस" का नंबर (३) पत्र है । पूज्य लाला जी महाराज गुरुदेव (डॉक्टर श्री कृष्ण लाल जी) को बहुत प्यार करते थे और उस पत्र लिखने वाले को समझाया है कि हमारे यहां दो रास्ते हैं, संसार के सुखों को भोगो, वस्तुओं को उपभोग करते हुए, उसका सार समझते हुए, धीरे धीरे उसे उपराम होते जाते है । और आगे लिखा है कि मेरे यहां की तालीम यही सिखाती है पूज्य गुरू महाराज का नाम (श्री कृष्ण जी) लेकर लिखा हुआ है कि यह वही रास्ता अपना रहा है और उसको यह ज्ञान हो जाएगा कि यह जो सांसारिक वस्तुएं हैं उनमें सार नहीं है । धीरे-धीरे उनको छोडता हुआ , एक दिन ऐसा आएगा कि वह सार को पकड़ेगा, ज्ञान को पकड़ेगा और आत्म स्वरूप हो जाएगा । खत लिखने वाले को लिखा है कि अगर आपको यह रास्ता पसंद है तो ठीक है, यदि आपको यह पसंद नहीं है तो आप दूसरा रास्ता अपना लें । अर्थात जैसे ही आप अध्यात्म की ओर बढ़े हैं और आप सब कुछ त्याग कर सन्यासी बन जाए । यह दूसरा रास्ता कठिन है क्योंकि शरीर से तो त्याग हो जाता है पर मन से त्याग नहीं होता और सच्चे संन्यासी, सन्यास की दीक्षा तब तक नहीं देते जब तक कि व्यक्ति ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम से निकल नहीं जाता है तब जाकर संन्यास या त्याग की दीक्षा देते हैं । ऐसा नहीं कि जो गेरुएँ कपड़े पहन ले वह त्यागी हो गया या संन्यासी हो गया । संन्यासी बनना है मन से ।

खैर शक्ति बाबू पर पूज्य गुरू महाराज की विशेष कृपा थी । इसी प्रकार बेटी सीता पर भी । और यह उन्हीं की इच्छा थी कि इन दोनों का योग हो । गुरु महाराज कई दफा ऐसी बातें कह देते थे, मुझे आदेश दे देते थे और मैं इतनी शक्ति नहीं रखता था कि उनके शब्दों को दूसरों तक पहुंचा दूँ । हालांकि मेरे लिए यह गलत थी ।

गुरु महाराज (परम संत महातमा श्रीकृष्ण लालजी महाराज) का शरीर तो अब नहीं हैं परन्तु उनका जैसा जीवन था, आदेश थे उनका अनुसरण करना ही उनकी सेवा है । आपको सब प्रकार की खुशियां प्रसन्नता प्राप्त हो । सक्सेना साहब (शक्ति बाबू के पिता जी) को मैं मुबारकबाद देता हूँ, डॉक्टर महेश जी को भी । इन दोनों का भी आप पर प्रभाव है । दोनों के जीवन का स्पष्ट प्रभाव है इन पर । आप सब मिलकर आशीर्वाद दे की शक्ति बाबु, जैसा गुरु महाराज चाहते थे, जैसे आशाएँ वो हम सबसे रखते थे, वे अपने जीवन में वैसे बन जाएँ । वास्तविक मकान जो बनाना है वो तो हृदय का है, उसकी नींव गुरु महाराज ने, इनके हृदयमें रख दी है । और उस नींव पर मकान बनाना इनका काम है । वो सेवा का भाव लेकर प्रैक्टिस करते थे । कहा करते थे कि हम जब इंजेक्शन लगाते हैं तो बहुत बुरा लगता है । कम से कम पैसे चार्ज करते थे । मुझे एक बार कहा कि किसी सत्संगी भाई के लिए आप उनसे कह दें कि वह अधिक पैसे न लिया करें । पर मैंने नहीं कहा । आज चूँकि की शक्ति बाबू को संबोधन कर रहा हूँ इसलिए यह बात कर रहा हूँ । शक्ति बाबू का स्वभाव बड़े ही सेवा का भाव लिए हुए हैं । गुरु महाराज का आशीर्वाद उनके हृदय में अंकित हैं । जैसे वे पक्के दुनियादार बने और फिर दीनदार बने, वहीं आशा, प्रिय शक्ति बाबू से, हम सब की है । इनके मन में बलिदान, सेवा, प्रेम, मधुरता, सारे ही गुण एक ओर सांसारिक और दूसरे योग्य संन्यासियों के है । मेरी गुरु महाराज के पवित्र चरण कमलों में करबद्ध प्रार्थना है कि शक्ति बाबू को अपना मार्गदर्शन कराते रहे । जो गुण उनमें थे, उन गुणों से ये प्रेरणा लेते रहे और दुनिया भी खूब भोगे, परंतु गुरुदेव की प्रसादी समझकर तथा अपने (व्यवसाय) से गुरु महाराज की सेवा करते रहे ।

मेरा अपना अनुभव भी अब यह कहता है कि हमें भाइयों की सेवा की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए । प्रेम की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए । सेवा का ही दूसरा नाम प्रेम है । जब तक भीतर में प्रेम नहीं है व्यक्ति सेवा नहीं कर सकता । हमने तो नहीं की,

वंचित रहे । परंतु हृदय के जो मुरझाए कमल है, वो तभी खिलेंगे जब हम सेवा करेंगे । निष्काम भाव से । हृदय में निर्मलता होनी चाहिए, कोई आशा नहीं रखनी चाहिए । कल मेरे पास एक भाई का पत्र आया है (हर सत्संगी में ऐसी बात होती ही है) । लिखते हैं कुछ बातें पीछे हो गई, मैं भूल जाऊं । मैंने तो कोई उनको ईट का जवाब पत्थर से नहीं दिया है । वह अब भी यही मन में रखते हैं कि जैसा वह विचार करते हैं, वैसा ही सारी दुनिया उसको मान लें । कोई व्यक्ति अपनी गलती मानने को तैयार नहीं है दूसरे से ही कहता है कि तुम अपनी भूल मान लो । यह बातें संसार में होती ही है । दुनिया हमें रोज बेवकूफ बनाती है और हमें बेवकूफ बनना है । गुरु महाराज के बताए हुए रास्ते पर चलना है और उनका जीवन ही हमारा मार्गदर्शन करेगा । जैसा वे सेवा करते थे, वैसे ही हमें भी करना है । सेवा को ही हम सबको मुख्य रखना चाहिए । जो पैसे से सेवा कर सकता है करें पर यह ऊँची सेवा नहीं है । हाथ पांव की सेवा बहुत अच्छी है । इतिहास में ऐसे उदाहरण है कि ऐसे महापुरुष भी हुए हैं जिन्होंने कुछ नहीं किया, केवल सत्संग की, अपने ईष्टदेव की सेवा की । फरीद जी को भी तभी ईश्वर दर्शन प्राप्त हुआ जब उन्होंने अजमेर शरीफ जा कर अपने इष्टदेव की सेवा की । संत मत में खासकर सिखमत में सेवा की प्रधानता है । जिस किसी ने पाया है सेवा द्वारा ही पाया है और सेवा भी ईश्वर की कृपा से मिलती है सबको नहीं मिलती । सेवा करनी चाहिए निष्काम भाव से, प्रसन्नता से, जो सेवा हम मन पर बोझ रखकर करते हैं वह ईश्वर की दरगाह में स्वीकार नहीं होती । प्रसन्नता से के साथ करें । हमारे यहाँ भी (उत्तर भारत में) दो तीन व्यक्ति हैं (बिहार में तो बहुत) जो बड़ी प्रसन्नता के साथ भाइयों की और संसार की सेवा करते हैं । मेरा निजी विश्वास होता जा रहा है कि सेवा से अधिक लाभ होता है और उद्धार ही हो जाता है । और कुछ नहीं कर सकता तो अपनी ही सेवा करो । पश्चिम और पूर्व में अंतर है । पश्चिम के लोग कहते हैं “Charity Begins at Home” पहले निज सेवा करो । हमारे यहाँ कहते हैं दूसरों की सेवा करने से निज सेवा स्वयं हो जाती है । हरेक पढा लिखा व्यक्ति भी यही सोचता है कि पहले निज सेवा करनी चाहिए परन्तु जो परमार्थ के रास्ते पर चला है उसको दूसरे की सेवा करनी चाहिए । पहले परिवार की सेवा करें । परिवार की सेवा क्या है ? परिवार में कुशलता होनी चाहिए, आनंद और प्रसन्नता का जीवन होना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को योगदान दे । परिवार में प्रसन्नता हो जाएगी तो बाहर भी हम लोग सेवा कर पाएंगे । इस

तरह का विस्तार करते चले जाना चाहिए । आस-पड़ोस में भी जो दुखी लोग हैं उनकी सेवा करनी चाहिए । हमारे पास जो दुखी लोग आते हैं उनकी सेवा करनी चाहिए । इस तरह इसका विकास करते चले जाए । हमारा शरीर, हमारी बुद्धि, हमारा मन, सब ईश्वर के चरणों में लग जाए संसार की सेवा ही ईश्वर सेवा है । एक व्यक्ति दो दिन पहले दुकान पर आए, उन्होंने कहा–"हृदय में राम बसे, मन में प्रेम हो, तन सेवा में लगा हो । ये तीन काम यदि हम करें तो भगवान कृष्ण का जो आदेश है गीता में उसकी पूर्ति हो जाती है और कुरुक्षेत्र या धर्म क्षेत्र के मैदान में हम विजय प्राप्त करते हैं" । यही हमारे जीवन का लक्ष्य है । "मन जीते जगजीत" यानी संसार में रहकर अपने मन पर विजय प्राप्त करना है । मन पर तभी विजय प्राप्त कर सकेंगे जब इसको ईश्वर के गुणों के साथ रंग दिया जाएगा । ईश्वर का स्वभाव ही सेवा करना है देखिये कितनी सेवा सारे संसार की करता है । हम परिवार की सेवा नहीं कर पाते । ईश्वर की पूजा करने का मतलब है कि ईश्वर के गुणों को सराहना और अपनाना । ईश्वर सेवा करता है, ईश्वर देता है, ईश्वर के के पास मोह नहीं है । तो हमारे भीतर में भी यही गुण आने चाहिए । हमारा तन मन धन सब के लिए हो, वास्तव में हमारा है ही क्या ? ईश्वर की ही वस्तु, ईश्वर के ही चरणों में अर्पण करनी है, जो इस जीवन में कर जाते हैं, वह सफल होकर जाते हैं जो तिजोरी में बंद करके जाते हैं वह पीछे झगड़े छोड़ जाते हैं । सेवा से मन में आनंद मिलता है, एक संतोष मिलता है, तृप्ति मिलती है । परन्तु आजकल चारों ओर शोषण हो रहा है । जो इस रास्ते पर चलता है वह (जिज्ञासु) इसके असर से बच तो नहीं सकता है तब भी उसको प्रयास करना है कि इस जीवन रुपी यज्ञ में अपना सर्वस्व ही आहुति दे दे । जब तक मन नहीं साफ होगा, न निर्मल होगा, तब तक मन में कोमलता नहीं आ सकती । अमृतसर में एक संत हैं । यहां देहली में भी एक अमेरिकन महिला हैं । वे उस मरीज को जिसको अस्पताल भी स्वीकार नहीं करता, अपने स्थान पर ले जाते हैं । सड़कों पर जख्मी पशु पक्षी या व्यक्ति जिनको संसार ठुकराता है, उन सब को उठाकर अपने स्थान पर ले जाते हैं, और अपने हाथों से मरहम पट्टी आदि की सेवा करते हैं । यहाँ देहली में भी जो अमेरिकन महिला है वह भी ऐसा ही करती है । किंग्सवे कैंप के पास उनका स्थान है और अमृतसर वाले व्यक्ति को भगत पूर्ण सिंह जी कहते है । इस वक्त उनके काम का विस्तार इतना बढ़ गया है कि साठ लाख रुपये का साल का बजट है । वह किसी से पैसा नहीं मांगते पता नहीं वह पैसा कहाँ से आता है ।

दुनिया फेंकती है पैसा उनके पास । सारे भारत में वह मशहूर हो गए, केवल सेवा से । सारा जीवन (इस समय ७० - ७५ वर्ष के हैं । अब भी इस आयु में भी) स्वयं मरीज को अपने हाथों से सेवा करते हैं । मरीजों की दुखियों की या कोई आर्थिक परिस्थितियों से गरीब आता है, कोई लड़की वाला आता है, उसके विवाह का प्रबंध करते हैं । ऐसा व्यक्ति ही शहंशाह कहलाता है । जिसको शहंशाही कहते हैं । राजाओं का राजा, महाराजा है । घर से निकले तो चौथे या पांचवें पढे हुए थे, पैसा जेब में नहीं था, लाहौर के एक गुरुद्वारे के बाहर आकर उनको प्रेरणा मिली है कि वहां के लोग बहुत सेवा करते है (गुरुद्वारों में लोग बहुत सेवा करते है) यह भी सेवा करते हैं और कुछ हाथ पांव की सेवा, काम भी करते रहे, पढ़ते रहे । अब आपने डबल एम ए पास किया । बड़े विद्वान भी है । सेवा ही आपका मुख्य रूप रहा है । विनोबा जी के बहुत ही प्रिय हैं ।

(२)

त्याग दीनता समर्पण ।

मुरादनगर, २९-१-१९८४ (सायं)

प्रभु मिलने की, प्रीत मन लागी । पाँय लगौं मोहे करौं वीनती कोई संत मिले बड़भागी ।

गुरु अर्जुन देव जी संसार का प्रतीक बनकर ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभु ! मैं आपके चरणों में पड़कर अनुरोध करता हूँ कि किसी महापुरुष (संत) से भेंट हो जाए" । इस प्रार्थना करने वाले व्यक्ति का थोड़ा सा जीवन देख लें तो पता लग जाएगा कि प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए और प्रार्थना करने वाले का हृदय किस तरह पवित्र और सूक्ष्म होनी चाहिए । यह वाणी गुरु अर्जुन देव जी के हैं । आप युवक ही थे । उन्नीस बीस साल की आयु है । पिता गुरु रामदास जी ने अपने बड़े सुपुत्र, पृथ्वी जी को, लाहौर जाने के लिए आदेश दिया है, वहां रिश्तेदारी में कोई शादी थी, परन्तु बडे सुपुत्र ने जाने से इंकार कर दिया । गुरुदेव ने (पिता ने) छोटे सुपुत्र अर्जुन देव जी को लाहौर भेजा और कहा कि जब तक हम न बुलाए आपको नहीं आना है ।

शादी खत्म हो गई ये पिता को गुरु और ईश्वर ही मानते थे । जो पत्र लिखे जाते थे उन्हें कोई व्यक्ति लेकर जाता था पैदल या बैलगाड़ी में । उन दिनों गाड़ियां नहीं थी । लाहौर से अमृतसर का पैंतीस मील का फासला है । पहला पत्र भेजा तो बड़े भाई ने अपने पास रख लिया और पत्र वाहक को कहा कि जाओ हम गुरू महाराज को दे देंगे । उनको गुरु (अर्जुन देव को) शांति नहीं है । उन्होंने दूसरा पत्र लिखा, उनका भी यही हशर हुआ । तीसरा पत्र भेजा वह गुरु महाराज को मिला ।

उसमें लिखा था:-

एक घड़ी न मिलते तो कलयुग होता ।
हुन कद मिलिए प्रिय तुम भगवन्ता
मोहे न व्यापै नींद न आवे बिन देखे गुरु दरबार (जिओ)

यानि 'आपके दर्शन के बिना न तो मुझे रात सुहाती है, रात को नींद आती हैं । जब कभी मैं आपसे पृथक होता था एक क्षण भर के लिए भी मेरी अवस्था जैसे कलयुग के प्राणी की होती है वैसी हो जाती थी । आप मुझे कब बुलाएंगे । ऐसा महापुरुष, ईश्वर के चरण में प्रार्थना कर रहा है कि "हे प्रभु ! कोई ऐसा संत मिले ताकि मेरे जीवन का उद्धार हो जाए" । वो अपने लिए नहीं कह रहा है, वह हम सब के लिए ईश्वर के चरणों में प्रार्थना कर रहा है ।

संत कौन हैं ? हमारे गुरुदेव कहा करते थे संत कोई हजार वर्ष में एक व्यक्ति आता है । संत का मतलब है सत् स्वरूप अर्थात उसमें और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है । जैसे भगवान गीता में कहते हैं "जब संसार में असंतुलन होता है मनुष्य चोला धारण करके संतुलन कायम करने के लिए आता हूँ" । ईश्वर ही जब इस रूप में आता है उसी को संत कहते हैं । वर्तमान युग में लाखों ही संत देखते हैं आप लोग । सब संत नहीं है । ईश्वर का नाम लेवा जरूर है । किसी की आलोचना नहीं करनी है परन्तु वे सब संत नहीं है । हम संत नहीं है हम सेवक है ईश्वर के । भगवान श्री कृष्ण का या ऐसे महापुरुष का, जैसे गुरु नानक देव हुए, कबीर साहब हुए, उनकी तुलना करना पाप है । संत किस प्रकार के होते हैं । जब वह संत मिल जाए तो सच्चे जिज्ञासु को जिसके भीतर में एक ही लालसा हो, (ईश्वर के मिलने की) उसको न खाना अच्छा लगे, न नींद अच्छी लगे, न पहनना अच्छा लगे, न यह संसार अच्छा लगे । उसका मन संसार से ऊब जाए । संसार को भोग लिया, देख लिया कि इसमें कोई सार नहीं है । यही तो भगवान कहते हैं । दो ही रास्ते बताए है, एक अभ्यास का और एक वैराग का । वही व्यक्ति अभ्यास कर सकता है जो बैरागी है । बैरागी का मतलब है जो बे-राग है, उसके भीतर में संसार के किसी वस्तु, किसी विचार, किसी व्यक्ति के प्रति कोई आसक्ति नहीं है यानि मोह नहीं है, त्याग वृत्ति है, संन्यास वृत्ति है । परंतु इसके साथ अनुराग, ईश्वर के चरणों का प्रेम, उसका अभ्यास, उसी का ध्यान, उसी की प्रशंसा कानों में गरजते हो, उसी की स्तुति जुबान पर हो, शरीर का रोम रोम उसकी की स्मृति करता हो । भीतर भी इन्द्रियों द्वारा, मन द्वारा, बुद्धि द्वारा, उसको केवल ध्यान प्रभु का ही हो । बार बार उसी का ध्यान हो, उसी का विचार हो, उसी को सब सुनते रहे, उसी की कीर्ति उपमा करते रहे, शरीर, मन, बुद्धि, इंद्रियां सब उसी के चरणों में लगी रहे । यह दशा थी गुरु अर्जुन देव की, ऐसा व्यक्ति क्या कहता है जब संत मिल जाए:-

“मन अरपौ तन राखों आगे,
मन की मत मोहे सगल त्यागे ।

पहली चीज है त्याग । त्याग बहुत कठिन है । हम भी कह देते हैं कि प्रभु सब कुछ तेरा है परन्तु यह सब जबानी है । जब प्रतिकूल परिस्थितियां आती हैं तो प्रभु को भूल जाते हैं । मन और बुद्धि की चतुराई की तरफ देखते हैं या किसी मित्र की ओर देखते हैं कि वह हमारी सहायता करेगा या किसी संबंधी की ओर जाते हैं कि वह हमारी सहायता करेगा ईश्वर को भूल जाते हैं । उस पर से श्रद्धा और विश्वास सब उठ जाते हैं । अनुकूल परिस्थितियों में हम कह देते हैं “प्रभु का शुक्र है” परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में सबका मन भ्रमित हो जाता है । यह भी कहने लगता है कि ईश्वर भी है या नहीं । व्यक्ति दुःख नहीं चाहता है । ईश्वर की यह लीला है । दुःख और सुख यह तो मन के रूप हैं । यह आत्मा का रूप नहीं है, जब तक आप मन के स्थान पर रहेंगे । जब तक मैं मन के स्थान पर हूँ दुःख सुख तो भोगना ही पड़ेंगे । दुःख सुख दोनों ही ईश्वर के चरणों में अर्पण करने हैं । अपने आप को आत्मस्थित बनाना है । जो आपका वास्तविक स्वरूप है, वह हम अज्ञान, भ्रम के कारण, संस्कारों के कारण, भूले हुए हैं, कि हम ईश्वर की ही संतान हैं, ईश्वर के ही रूप हैं, उस अंशी के ही अंश हैं । दुख सुख तो मन का रूप है । यही गीता में समझाया गया है कि व्यक्ति को द्वंदों से ऊपर उठना है । सुख और दुःख, लाभ और हानि, शत्रु और मित्र, संसार में जो भी द्वंद है, उन सब के ऊपर उठे । तो गुरुदेव कहते हैं कि यदि मुझे कोई सच्चा संत मिल जाये तो पहला काम क्या करूँगा कि मन उनके चरणों में अर्पण करूंगा । केवल राजा जनक हीं अर्पण कर सके थे, बाकी नहीं । आग लग रही है, राजा जनक के महल में एक संन्यासी भी खड़ा है, वह व्याकुल हो रहा है । राजा जनक पूछते हैं कि आपको क्या हो रहा है भाई । मेरा महल जल रहा है तो मुझे कोई चिंता नहीं है, तुम क्यों चिंतित हो । कहता है मेरा लोटा महल में रह गया है, मैं यह चाहता हूँ कि अपना लोटा वहां से ले आऊं । बड़े बड़े संत, मुनि, योगी भी मोह की आसक्ति में बंधे रहते हैं । इससे मुक्त होना बहुत कठिन है । तो गुरुदेव कहते हैं कि पहले मन अर्पण करूँगा । जैसे किसी संत की सेवा में जाते हैं तो कोई उपहार लेकर जाते हैं, प्रसाद लेकर जाते हैं, मैं क्या करूँगा, अपना मन अर्पण करूँगा ।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तुज्झ ,
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मुज्झ ।

वास्तव में मेरा तो कुछ है ही नहीं । यह मन भी तो मेरा नहीं है । शरीर, मन, बुद्धि, सब तेरा ही है और तेरी ही सेवा में अर्पण करता हूँ । और जो मुझे यह संपत्ति दे रखी है शरीर व शरीर के जो संबंध है माता पिता, मेरी संतान, स्त्री है, या धन है, या मकान या मेरी बुद्धि की चतुराई है या और किसी प्रकार का धन है वह प्रभु सब आपके के चरणों में अर्पण करता हूँ क्योंकि मेरा तो कुछ भी नहीं है ।

"मन की गति मोहे सगल त्यागे"

यह बहुत कठिन है । मन हमेशा प्रतिकूल की ओर जाता है । उल्टे रास्ते जाता है । यह अज्ञान व पिछले संस्कारों के कारण ईश्वर से विमुख रहता है । इसके भीतर में विश्वास आता ही नहीं कि ईश्वर है या नहीं । इसके भीतर में श्रद्धा आती ही नहीं । इसमें निरंतर संकल्प विकल्प उठते ही रहते हैं । जैसे रेशम का कीड़ा अपने भीतर से धागा निकाल कर अपने आपको बाँधता ही रहता है । इसी तरह मनुष्य भी अपने संकल्पों द्वारा चाहे अच्छे हो या बुरे, वह दोनों से अपने आपको बाँधता रहता है अर्थात अपने संस्कारों को और दृढ करता रहता है । गुरुदेव हमारे प्रतीक बन कर कहते हैं कि अगर संत (आप) मिल जाते हैं तो मेरे मन की गति जो है यानी मेरी बुद्धि जो है वह मैं आपके चरणों में अर्पण करता हूँ । इस मन की बुद्धि को अर्पण करने के लिए भगवान कृष्ण गीता के दूसरे अध्याय से शुरू करते हैं । अर्जुन को समझाते हैं कि तू अपने मन के पीछे क्यों लग रहा है । अपने मन को समझा । यह किस भ्रम में पड़ गया है कि ये मेरे गुरु हैं, ये मेरे भाई है, मैं इनको मारूंगा तो मुझे पाप लगेगा । इस पाप पुण्य के अज्ञान में तू कहाँ फंस गया है । मैं तुझे समझा रहा हूँ कि इसमें कोई अधर्म नहीं । समझाते समझाते कहते हैं कि तुम तो आत्मा हो, तुम शुद्ध आत्मा हो, मेरा रूप हो । यह पाप पुण्य तो मन को लगते हैं, आत्मा को नहीं लगते । तो अपने आप को पहचान इस अपनी तुच्छ बुद्धि को मुझे अर्पण कर दें । अर्जुन फिर पूछता है जिसने अपनी बुद्धि को ईश्वर के चरणों में अर्पण कर दिया और आत्म स्थित हो गया है जिसकी स्थित प्रज्ञ अवस्था हो जाती है यानी शुद्ध बुद्धि आ जाती है और आत्मा का प्रकाश उस शुद्ध बुद्धि पर पड़ा हुआ होता है तो उस बुद्धि में वह निरंतर रहता है तो ऐसा व्यक्ति कैसे बोलता है, कैसे चलता है, कैसे व्यवहार करता हैं ? भगवान समझाते हैं कि उसकी मन व् बुद्धि से ये द्वंद जो है (लाभ हानि सुख दुःख मेरा तेरा आदि) सब खत्म हो जाते हैं । उसके मन व बुद्धि में आत्मिक ज्ञान है अर्थात वह अपने आप को व परमात्मा को सब जगह देखता है । अपने में भी परमात्मा को देखता है व

सब में आत्मा के ही दर्शन करता है । भिन्न भाव से देखता ही नहीं है । आगे और समझाते हैं कि ऐसे व्यक्ति पवित्रता सच्ची हैं पवित्रता का मतलब भगवान समझाते है कि वह व्यक्ति पवित्र है जो अपने आत्मा का अनुभव करता ही है लेकिन शत्रु में भी आत्मा के दर्शन करता है यानि मेरे दर्शन करता है । वनस्पति में भी दर्शन करता है-- पशुओं में भी (उदाहरण देते हैं जैसे हाथी शेर कुत्ता आदि) नीच से नीच प्राणी में भी मेरे दर्शन करता है क्योंकि उसके भीतर में एक ही आँख है और वह ईश्वर को ही देखती है ।

अपने मलीन बुद्धि को त्यागना है और जो ईश्वर या संत का आदेश है उसका पालन करना है । साधना की अंतिम सीढी यही है ।

जेहिं विधि राखे राम, तेहिं विधि रहिए ।

पहले तो उस विधि यानी परमात्मा या गुरु के, संत के, आदेश को जानना है ।

हुकुम रजाई चालना

यानि आप ही सवाल करते हैं और आप ही प्रश्न का उत्तर देते हैं कि व्यक्ति चाहे किसी प्रकार की साधना कर ले, स्नान करने की, चुप रहने की, व्रत रखने की, बुद्धि की चतुराई की, इनसे कुछ नहीं मिलेगा । तो प्रश्न करते हैं कि फिर हम संसार में आकर, सत् स्वरूप हो कर ईश्वर के चरणों में कैसे जाए । क्या साधना करें ? हमारे और परमात्मा के बीच में माया की जो दीवार है, कैसे टूटे ? तो खुद ही जवाब देते हैं कि जो ईश्वर की गति गति में अपनी गति को मिला देता है केवल उन्हीं का उद्धार होता है । आगे जाकर बताते हैं कि जिस व्यक्ति ने परमात्मा या संत के हुकुम का ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसमें अहंकार रह ही नहीं सकता । यानि उसके और परमात्मा के बीच में कोई दीवार नहीं रहेगी । वह परमात्मा रूप हो जाएगा । भगवान यही समझा रहे हैं अर्जुन को गीता में कि उसे जो बुद्धि पर विश्वास था, उसका त्याग कर दें । भगवान का जो आदेश है उसका वह पालन करें यानि अपने जो सब कर्म है वह मेरे चरणों में समर्पण कर दे और इस संसार से जूझो यानि कर्म क्षेत्र या धर्म क्षेत्र में लड़ाई करो । (यानि संसार में अनासक्त रहो) । कैसे रहना है ? अपने मन को पूर्णतया मेरे में या आत्मा में लय कर देना है । With Mind in Union with me यह कर लिया फिर किसी प्रकार की इच्छा नहीं रखनी । फिर आगे कहते हैं “No Trace of the Self” यानि अहंकार का लेश मात्र भी अस्तित्व न रहे, अहंकार पूर्णत: खत्म हो जाए तथा सभी प्रकार की कामनाएं शांत हो जाए

। यदि हमारे मन में यह इच्छा है कि हम प्रभु के दर्शन करें और संत हमें करा दें और ईश्वर की कृपा से हमारी प्रार्थना सुनी जाए और कोई संत हमें मिल जाये तो पहले हमें क्या करना होगा । वही भगवान के आदेश का पालन करना होगा । सब कुछ उसके चरणों में अर्पण करना होगा । मन अहंकार इच्छाएं कामनाएं सब कुछ चरणों में अर्पण करनी होगी । उसी यज्ञ में आहुति देनी होगी इन सब की, अपने आपको बिल्कुल खाली करना होगा । अंदर का बर्तन साफ करना होगा, निर्मल बर्तन करके यानी गंगा स्नान करके उस संत की संगत में रह कर अपने आप को पवित्र कर के यह आहुति उस संत के चरणों में अर्पण करनी होगी ।

जो प्रभु की हर कथा सुनावे
अन् दिन फिरौ तिस पीछे वैरागे

कोई संत जब मिल जाएगा तो वह प्रभु की उपमा, प्रभु की कृतियां, प्रभु के गुणों की कथा करेगा । अपने प्रीतम की बात सुनकर व्याकुलता और तीव्र होगी और मैं वैरागी होकर यानी संसार को धक्का देकर उसके पीछे जाऊंगा । संसार दो हैं एक हमारे शरीर के बाहर, एक शरीर के भीतर । दोनों संसारों का त्याग करना होगा । बाहर का संन्यास तो बड़ी आसानी से हो जाता है परन्तु भीतर का संन्यास बहुत कठिन है । अपनी कामनाओं को छोड़ना इच्छाओं का त्याग करना, इंद्रियों के भोगों में जो सुख व रस है उसका त्याग करना बड़ा हीं कठिन और सबसे कठिन अपने मन व अहंकार का त्याग करना हैं । इनका त्याग करके ही तो वैरागी बनेंगे । वैरागी का मतलब सिर्फ बदन पर मिट्टी लगाने से नहीं है । भीतर में वैराग उत्पन्न होना चाहिए ।

पूरब करम अंकुर जब प्रगट्यो
भेट्यो वैरागी ।

जब भीतर में ईश्वर की कृपा से हमारे अच्छे संस्कारों का बीज अंकुरित होता है तब प्रभु के कृपा से सच्चे संत से भेंट होती है । यह बड़े भाग्य है हमारे यदि किसी महापुरूष की चरण रज प्राप्त हो जाये । चरण रज का मतलव है गुरु प्रसाद । वे प्रसन्न हो जाए और जैसे भगवान ने अर्जुन को अपना लिया वैसे कोई संत हमें अपना ले । वह कब अपनाएगा ? जब हम सब कुछ निछावर कर देंगे । जब हमने पिछले और इस जन्म में अच्छे संस्कार किये होंगे तब संत से भेंट होगी । उसको भेंट होने से क्या होगा ?

मिट्यो अंधेर मिलत

यानि उस महापुरुष के मिलने से हमारा अज्ञान दूर हो जाएगा। हमारा मन जो संसार में अटका हुआ है वह वहां से स्वतंत्र होकर उसके चरणों में लग जाएगा। भीतर में निर्मलता होने हमारी आत्मा परमात्मा में लय हो जाएगी। हमारे भीतर में पूर्ण प्रकाश हो जाएगा। प्रकाश का मतलब है कि आत्मा परमात्मा, सत्-चित्-आनंद स्वरूप है। प्रेम है, आनंद है, शांति है। यही हमारा स्वभाव हो जाएगा। सहज अवस्था हो जाएगी। यह नहीं कि बुद्धि से हमने सोच लिया कि आत्मा सत्-चित्त-आनंद है इतने में संतुष्ट हो जाए, नहीं। हमारा स्वरूप ही आत्मा स्वरूप हो जाएगा। हमारी सहज अवस्था हो जाएगी कि हम व्यवहार में, वाणी में, इन्हीं गुणों का विविस्तार करेंगे।

मिट्यो अंधेर मिलत हरी नानक,
जन्म जन्म की सोई जागी।

गुरुदेव कहते हैं कि जन्म जन्मांतर से हम भाव सागर के चक्कर में घूम रहे हैं अपने संस्कारों व अज्ञान के कारण अपने कर्मों के कारण उस संत के मिलने से, उसके प्रसादी के मिलने से, उसकी कृपा मिलने से, सब अज्ञान, सब भ्रम, सब संस्कार, खत्म हो गए। अब हम नई दुनिया में प्रवेश करते हैं अर्थात सत् स्वरूप, ईश्वर स्वरूप, हो जाते हैं जो हमारे जीवना का लक्ष्य है।

भावार्थ इसका यही है कि हम सब का लक्ष्य यही है होना चाहिए कि हमें स्वतंत्र होना है, जन्म-मरण के चक्कर से छूटना है, और इस भक्ति के लिए सरल साधन, सभी महापुरुषों ने (भगवान कृष्ण, भगवान राम) वेदों ने, संत मत के बड़े बड़े आचार्यों ने, कबीर साहब ने, गुरुनानक देव ने, सभी ने एक ही रास्ता बताया है कि किसी रसिक वैरागी पुरुष की खोज करें। ईश्वर से प्रार्थना करें और जब ईश्वर कृपा से सच्चा संत मिल जाए तो उसके चरणों में अपने आप को अर्पण कर दे। एक तरफ वैराग्य हो यानी भगवान कहते हैं कि धर्मक्षेत्र में लड़ाई लड़ो और दूसरी तरफ अनुराग करो, मेरे साथ प्रेम करो, मुझ में ही अपने आप को पूर्णत: समर्पण कर दो, मुझे ही सब कुछ समझो।

हम तो अभी संसार नहीं छोड़ पाए हैं यह सत्य है। इसलिए कहते हैं कि वह व्यक्ति भाग्यशाली है जिसके भीतर वे सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। भगवान या कोई संत यह नहीं कहता के संसार को छोड़ दो कहीं जंगलों या गुफाओं में चले जाओ। परन्तु यह कहते हैं

कि संसार का जो सार है उसकी, जिसकी समझ में सार आ जाएगा वह वैरागी बन जाएगा फंसेगा नहीं । परन्तु वह व्यक्ति लाभ और हानि, सुख और दुःख, शत्रु और मित्र, अपना-पराया, अनुकूल-प्रतिकूल इन द्वंदों से इतना जकड़ा हुआ है कि बुद्धिजीवी भी इन बातों को जानते हुए द्वंदों से निकल नहीं पाते हैं । बड़ा कठिन हैं वैरागी बनना, संन्यासी बनना । वैराग के साथ अभ्यास यानि प्रभु चरणों का प्रेम होना चाहिए ।

जब तक ऐसा संत नहीं मिलता है तो प्रश्न उठता है तब तक क्या किया जाए । जैसा भी कोई सत्संग मिले जहाँ ईश्वर के नाम की चर्चा होती हो वहाँ पवित्रता भी हो, वहां जाना चाहिए । वहां से प्रेरणा मिलेगी । प्रतिक्षण ईश्वर की याद में रहना चाहिए और महापुरुषों ने अपने पीछे जो पवित्र वाणी छोड़ी है, गुरुमहाराज के प्रवचन हैं, कबीर साहब की वाणी है, अन्य महापुरुषों की वाणी है, उनकी वाणी तथा उनके जीवन का अध्ययन करना चाहिए । महापुरुषों की वाणी के अर्थ व्याकरण से नहीं निकालने चाहिए । नारद सूत्र में और रामायण में नवधा भक्ति यानी नौ प्रकार की भक्ति बताइ है । महापुरुषों की वाणी को सुनना भी भक्ति है । किस से सुने, जिसने आत्मा साक्षात्कार कर लिया हो या करने वाला है, जिसका जीवन पवित्र है । उस वाणी के अर्थों में जो गंगा है, उसमें स्नान करना है । केवल सुन लें परंतु हमारा ध्यान घर में हो, यह सुन लेना नहीं है । बड़ी श्रद्धा से सुनना है । फिर बढ़ना है, इसी तरह पढ़ना भी श्रद्धा से हैं । फिर उसका मनन करना है, यह भी एक भक्ति का रूप है । विचार करना, विचार करते करते उस वाणी के अर्थों में, भावो में, बह जाना, तदरुप हो जाना, ब्रह्म विद्या हासिल करना वैसे ही बन जाना । वही सुने हुए विचार, वह सुने हुए गुण, अपने भीतर में उतार कर अपने जीवन को व्यावहारिक रूप देना है । इसी तरह करते करते लय अवस्था में पहुंच जाना है ।

हमारी पुरानी धार्मिक बातें बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु हम उस तरफ ध्यान ही नहीं देते । किसी महापुरुष से किसी महापुरुष की वाणी सुनिए । यदि कोई महापुरूष नहीं है तो किसी अच्छे पुरुष से जो कुछ पवित्र हो, जिसके मन में कुछ लगन हो, ईश्वर का प्यार हो उसी मुझसे वाणी सुनी चाहिए । गुरु नानक देव ने तो यहां तक कहा है कि महापुरुष की वाणी सुनने से ही उद्धार हो जाता है और यह ठीक है । नारद सूत्र में जो नौ प्रकार की भक्ति बताई गई है उसमें से यह भी एक भक्ति का साधन है, इस भक्ति के साधन से उद्धार हो जाता है । परन्तु हम रोज पढते हैं मगर न इसके अर्थ समझते हैं, न वैसा करते हैं । हमारे में दिखावा ज्यादा

हो गया है, जिसको हम कर्मकांड कहते हैं । यानी कर्मकांड की वास्तविकता को न समझ कर ऊपर ऊपर की जो बातें हैं उसी का कोई पालन करता हैं या कोई उसका हंसी ठट्ठा करता है । परंतु नहीं, जितनी हमारी सनातन विधियां, सनातन रीतियां है, सनातन कर्मकांड हैं, सब में सार है ।

गुरु महाराज कहा करते थे कि किसी प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए हो सकता है कि हमारी ही भूल हो, हमारी गलती हो, हमारी ही समझ में कमी हो । समझ लीजिये, सोच लीजिये, हो सकता है यह रहस्य आगे जाकर खुल जाये, अपनी ही गलती समझ में आ जाय । महापुरुषों ने जितनी भी बातें बताई है जितने भी शब्द लिखे हैं, जितने भी वाणी लिखी है उसका गुढ अर्थ है गुढ रहस्य है । उनको समझने का प्रयास करना चाहिए ।

अभ्यास और वैराग्य

जमशेदपुर,७-२-१९८४ (प्रात:)

व्यक्ति के भीतर संकल्प विकल्प उठते रहते हैं चाहे बच्चे हो चाहे बड़े हो, सभी यही कहते हैं कि भीतर में शांति नहीं है । साधना में भी बैठते हैं तो जैसा आनंद मिलना चाहिए वैसा नहीं मिलता है । कारण यह है कि विचार बहुत उठते हैं । इस विषय में पूज्य गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लालजी महाराज) ने पुस्तक लिखी है "अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय" । वो आप सब को पढ़नी चाहिए और पढ़ी भी होगी । ये विषय आदि काल से ही चला आ रहा है इसी विषय को लेकर अर्जुन भगवान से पूछता है, वे उत्तर देते हैं कि वायु का मुट्ठी में काबू करना संभव है परन्तु मन व मन की जो चंचलता है, संकल्प विकल्प हैं, दौड धूप है, यह काबू में नहीं आती है । अर्जुन सोचता है कि मैं क्या करूँ ? इसी तरह हर व्यक्ति सोचता है कि यह रोग मुझमें ही है, नहीं । यह हम सब को ही है और आदिकाल से है । यह चलता ही रहेगा । साधना यही है कि मन शांत हो, चंचलता छोड़ दें । आत्मा की साधना नहीं होती, साधना मन की है, मन को बनाना है । मन को बनाने का मतलब है कि पहले तो समझना चाहिए कि मन क्या है ? हम क्या है ? आत्मा तो सबके भीतर में है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं । युग युगांतर से मनुष्य का विस्तार हो रहा है । उसका वर्तमान रूप उसके अपने संस्कारों से है । उन संस्कारों से निवृत होना है, यही संस्कार हमारी वृत्तियाँ बनाते हैं, कामनाएं, इच्छाएं, आशाएं, विचार, संकल्प-विकल्प यही भीतर में संस्कारों को गति देते हैं । इसी कारण यह मन भीतर में उलझन रखता है । तो जब तक भीतर में वे संस्कार खत्म नहीं होते विचार तो उठते हीं रहेंगे । वेदांती भी यही कहता है योग क्या है ? आत्मा व परमात्मा का मिलाप क्या है ? जब भीतर में वृत्तियों का निरोध हो जाता है यानि जब वृत्तियाँ खत्म हो जाती है, संस्कार खत्म हो जाते है, तब योग की संभावना होती है अर्थात आत्मा का साक्षात्कार या परमात्मा के दर्शन होते हैं । हम चाहते हैं कि भीतर में गंदगी भी पड़ी रहे और दर्शन भी हो जाए, यह नहीं हो सकता । कोई झलक तो मिल सकती हैं । कभी प्रकाश दिख गया, कोई शब्द सुनाई दे गया या कभी किसी महापुरुष के दर्शन हो गए । कभी साधना करते करते आनन्द मिल गया परन्तु पूर्ण आनन्द जो आत्मस्वरूप है जो परमात्मा का स्वरूप है, वो तब तक प्राप्त नहीं होगा, वो गंग प्रवाह का अनुभव तब तक नहीं होगा, जब

तक वृत्तियों का खात्मा नहीं होगा, अंत नहीं होगा । क्योंकि वृत्तियों के कारण ही ये विचार उठते हैं । तो अर्जुन कहता है, हे भगवन ! मैं क्या करूँ ?

जितने भी ऋषि मुनि हुए हैं उन्होंने इस विषय पर अपने अपने विचार प्रकट किए हैं । स्वामी रामकृष्ण परमहंस है, स्वामी विवेकानंद है, अन्य महापुरुष हैं सब ने हीं इस विषय पर कि इन विचारों को किस तरह समाप्त किया जावे, इस पर किस तरह विजय प्राप्त की जावे, अपने अपने विचार प्रकट किये । भगवान कहते हैं कि यह तो बहुत सरल है । दो साधन करे । एक साधन अभ्यास का दूसरा बैराग का । हम आँखें बंद करने का साधना करते हैं परन्तु आँखें बंद करने से पहले जो हमारे लिए विधि है 'वैराग' वो हम नहीं करते हैं । हम वैसा अभ्यास नहीं करते जैसा भगवान ने समझाया है कि जब मन अपने केंद्र से हटे तो बार बार उस केंद्र पर लाने का यत्न किया जाए । इसको उन्होंने अभ्यास कहा है बार बार कोशिश करो, बार बार प्रयास करो, बार बार त्याग करो, परन्तु जो भीतर में इसकी वृत्ति है, पिछले संस्कार हैं, आप कितना भी प्रयास करें मन वृत्तियों से मुक्त नहीं होता । तो फिर दूसरा साधन बतलाया है वैराग का । बिना वैराग के,वृत्तियाँ खत्म नहीं होंगी ।

गुरु महाराज कहा करते थे कि संसार में जब आप आए हैं तो यहां के भोगों को खूब भोग ले, उन्हें बुद्धि से भी समझ लें, यहां की जितनी वस्तुएं है उन्हें धर्म शास्त्र के अनुसार भोगे फिर उनका सार देखें तो वास्तविकता समझ में आएगी कि यह तो कुछ भी नहीं है । जिस युवावस्था पर हम गर्व था इसको वृद्धावस्था में आकर देखते हैं तब समझते हैं कि अरे, यह तो एकस्वप्न था । इस तरह वर्तमान आयु में, यह सोचना चाहिए कि यह स्वप्न की तरह यही खत्म न हो जावे ।

मनुष्य वही है जो सत्यता के साथ अनुराग रखता है, सत्यता को पकड़ता है । जो असत्य हैं उसका त्याग करता है । इसी त्याग में बैराग है । दूसरा मतलब है 'मोह मुक्त होना' । गीता में मोह मुक्त होने का जो आदेश है वह यह है कि अपने कर्मों का जो फल है उसके साथ आसक्ति नहीं होनी चाहिए । उसका परिणाम क्या होता है, अच्छा या बुरा, इसे न सोचकर उसे प्रभु के चरणों में अर्पण कर देना चाहिए । किसी प्रकार की आशा और इच्छा नहीं रखनी चाहिए । मोह के दो रूप हैं राग और द्वेष जिनमे हम फंस जाते हैं, जहां सब संसार फंसा है । यह तो नए संस्कार है, पुराने संस्कारों का, पुरानी वृत्तियों का कैसे त्याग करें ? किस प्रकार की आशा और इच्छा नहीं रखनी चाहिए ? उनके भिन्न भिन्न साधन है । मुख्य साधन

सत्संग यानी किसी महापुरुष का सत्संग करें जो सत् स्वरूप हो । उसके बताये हुए रास्ते पर चले । वो एक ही रास्ता बतलाता है, वो एक ही साधन बतलाता है । 'प्रेम' , 'ईश्वर प्रेम' । अपने आप को पूर्णतया ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दीजिये । इसलिए नहीं कि हमारा अमुक काम बन जाये जैसे बीमार बच्चा स्वस्थ हो जावे, रोग की निवृत्ति हो जावे, मेरी आर्थिक कठिनाई दूर हो जावे । यह बातें तो सौदेबाजी है, ईश्वर के चरणों मे समर्पण नहीं है । यह सब मन का खेल है इसलिए हमारी वृत्तियों में परिवर्तन नहीं आता है । जो विचार थे, जो हमारी आदत थी, जो हमारा स्वभाव था सब कुछ वही का वही है । क्योंकि सच्चा प्रेम उत्पन्न हुआ ही नहीं । सच्चा प्रेम उत्पन्न हो जावे तो जो अतीत का आवरण है, वृत्तियां हैं, संस्कार हैं, वे सब उस महान हस्ती में समर्पित हो जाते हैं । बहुत लोग यही कहते हैं कि पचास पचास साल हो गए सत्संग में आते हुए परंतु झूठ बोलने की आदत नहीं जाती । वो जायेगी कैसे, क्योंकि ईश्वर के साथ सच्चा प्रेम नहीं है । गुरु के से सच्चा प्रेम नहीं है । भाई आते हैं, (कहना तो नहीं चाहिए किन्तु करूं क्या) इच्छा लेकर आते हैं कि अमुक काम हमारा हो जाए । सत्संग में आने से यह काम हो जावे तो हो जावे । परन्तु यह समर्पण नहीं है ।

ईश्वर की सच्ची प्रेम-अग्नि में ही वह संस्कार खत्म हो सकते हैं, अन्यथा इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है । उपनिषदों में, वेदों में, मनुष्य को यह समझाया है कि तू कहां फंसा हुआ है । यह भी एक वैराग का साधन है कि अपने पांचों शरीर से मोह से मुक्त हो जावे यानि यह स्थूल सशरीर प्राण मन बुद्धि आनंद ये जो पांच प्रकार के आवरण है उनसे मोह मुक्त हो जावे । शरीर है, यह ख्याल रखना चाहिए कि यह तो मेरा नहीं है, यह तो नश्वर है, जिसके भीतर में शुद्ध आत्मा है । जो विचार उठते हैं ये तो मन के विकार हैं । परन्तु कहना सरल है । वास्तव में व्यवहार में जिसको देखो इसी में फंसा है । हम भले ही कह दे कि 'मैं आत्मा हूँ' परन्तु व्यवहार हमारा आत्मा का नहीं है क्योंकि भीतर में मन जो है वो इसी शरीरों में मोह युक्त हो रहा है तो ये बात केवल कहने तक ही सीमित नहीं रखनी है, इसकी साधना करनी है । दृढ संकल्प के साथ करें जैसे स्वामी दयानंद ने की । अपने शरीर के साथ बिल्कुल संबंध छोड़ दें । यदि कोई आपकी पिटाई भी करें तो आपको उसका दुःख ही न हो । शरीर के साथ वैराग करने का मतलब है कि शरीर के जितने दुःख सुख हैं इन सब का आपको भान ही न हो । आप स्वयं अपने में आत्म स्वरूप है । कबीर साहब कह सकते हैं, हम नहीं कह सकते कि भगवान जैसी चदरिया आपने दी थी वैसे ही आपके चरणों में अर्पित करता हूँ । यह है आपका असली 'वैराग्य' । अपने शरीर के साथ कोई संबंध है ही नहीं । धीरे धीरे समझ

आएगी कि मैं शरीर नहीं हूं, न मेरा शरीर है । कहने में बडा अच्छा लगता है कि यह मेरा शरीर है, परन्तु हम सब इसी में फंसे हैं । मैं शरीर हूँ, मैं मन हूं । तो इन सबसे वैराग करना है । ऐसा वैराग हो जाने से मोह मुक्त हो जाता है । और धीरे धीरे ऐसे व्यक्ति के ज्ञान के प्रकाश में सब संस्कार, सुगमता से खत्म हो जाते हैं ।

तो विचार इस तरह खत्म नहीं होंगे जिस तरह हम सोचते हैं । विचारों को धीरे धीरे काबू करना होगा और अपने जीवन को इष्टदेव की इच्छा के अनुसार बनाना होगा । हम वैसा करते हैं जैसा हमारा मन करता है । उसी के अनुसार हम जीवन व्यतीत करते हैं । ऐसा व्यक्ति कभी भी जीवन में सफल नहीं हो सकता । तो सब शरीर के दुःख सुख में फंसे हैं, मन के संकल्प विकल्प में फंसे है, जो इंद्रियों के भोग है उनमें फंसे हैं । संसार के साथ जो हमारा व्यवहार है वह सब राग-द्वेष का है । किसी को देखकर हम हमें बडी प्रसन्नता होती है । किसी को देखकर हमें बड़ा दुख होता है । तो ऐसा व्यक्ति कैसे सफल हो सकता है ? सबका यही हाल है इसलिए भगवान कहते कि लाखों करोड़ व्यक्तियों में कोई विरला ही ऐसा व्यक्ति है जो परमार्थ के रास्ते पर चलता है और उस पर चलने का अभ्यास करता है । हाँ, लाखों करोड़ों में एक आध व्यक्ति जो वास्तविकता को समझता है जो मेरे मत पर चलता है । तो जो भी सत्संगी है वह किसलिए सत्संग में आता है । वह इस धारणा को लेकर आवे कि मुझे तो इस माया, प्रपंच, द्वंद अवस्था से स्वतंत्र होना है । संसार तो उत्तेजना देगा ही दुःख देगा ही । शरीर तो दुःख सुख देगा ही, इन्द्रयाँ भी हमें दुःख सुख देगी ही, बुद्धि के संकल्प विकल्प से भी दुःख सुख मिलेगा ही । यह सब बातें हमारे सम्मुख है । यह बड़ी चुनौती है एक सत्संगी के लिए । इनका मुकाबला करता है और इन सब पर विजय प्राप्त करते हुए प्रभु के चरणों तक पहुंचता है । यह साधारण व्यक्ति के लिए प्रार्थना है । इसलिए भगवन अर्जुन से कहते हैं कि तुम वीर बन, तू क्षत्रिय है । क्षत्रिय वो है जो वीरता के प्रतीक होते है । खुद काम करते हैं । खुद मेहनत करते हैं और वो हीं क्षत्री है । क्षत्री के घर में पैदा होना ही क्षत्री होना नहीं । क्षत्री वो है जो कर्म से क्षत्री है, जो प्रमादी नहीं है, जो शरीर के सुखों की परवाह नहीं करता है । वह तो जूझ जाएगा यह सोच कर के कि मुझे तो सफल होना ही है । सफलता हमारे लिए क्या है ? यानि संस्कारों पर, मन पर, विजय प्राप्त करना है और आत्मा के दर्शन या गुरु या परमात्मा के दर्शन करने हैं । तो संस्कारों को खत्म करना है । इसका एक और साधन महात्मा बुद्ध ने बताया है कि जो बहुत सरल है । स्वामी विवेकानंद ने भी राज्योग पुस्तक में साधन पर लिखा है कि ये मन के विचार कैसे कम करें । साधना मे जब बैठते हैं तो पहले

भजन आदि प्रार्थना पढ़ लेनी चाहिए । उसके बाद अपने मन को एक दो मिनट के लिए देख लेना चाहिए । देखना यह चाहिए कि यदि संकल्प विकल्प उठाता है तो उठने दीजिये कुछ मत करिये । संकल्प अच्छे विचार उठाता है उठाने दीजिये, कुछ मत करिये । केवल देखिये कोई प्रतिक्रिया मत करिये । सरलता से देखिए साक्षी रूप होकर देखिये । एक दो मिनट में जब मन देखता है कि मुझे कोई देख रहा है तो यह शांत हो जायेगा । महात्मा बुद्ध ने तो यही साधन बतलाया है कि अंत तक यही साधन करते चले जाए । स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि ऐसा करके जब मन शांत हो जाए तब आपके गुरु ने जो साधना बतलाई है आप लोग भी ऐसा किया करें और जब भी कभी मन अधिक चंचल हो जावे तो इस प्रकार अपने मन को देखना चाहिए मन शांत हो जाता है शून्यता आने लगती है । विचार खत्म हो जाते हैं । तो सावधान रहना चाहिए । इसमें दृढ़ता आने की संभावना है । इसलिए वेदान्तियों में और महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों में हमेशा अंतर रहा, वाद-विवाद रहा । जड़ता न आने पावे, उसके लिए प्रेम और ज्ञान जो भी आप साधना करते हैं उन दोनों में से एक का परित्याग करना होगा । दोनों में से किसी एक को ही अपनाना होगा । भीतर में शून्यता में शीलता होनी चाहिए । और यह कैसे पता लगेगा की चरित्र निर्माण हो रहा है ? हम किसी से इर्ष्या करते हैं तो दुखी हो, हम किसी की भी निंदा करते हो तो दुखी हो, यानि हमसे बुराई नहीं हो पाए । इसके अतिरिक्त भीतर में एक विचित्र आनन्द का आभास हो । उस आनंद में न दुख रहता है न सुख रहता है, न किसी प्रकार की अपेक्षा रहती है । गंगा की तरह शीतलता का प्रवाह चलता ही रहता है । इस प्रकार आप भीतर में उपरामता प्राप्त करें । एक और तरीका है आप अपने अतीत को भूल जाते हैं तभी तो संस्कार खत्म होते हैं । यदि आपको अतीत याद आ जाता है तो अभी संस्कार छूटे नहीं संस्कार चेतन अवस्था में है । जैसे पानी पर लकीर डालिए, लाइन खींचे, तो उसी वक्त खत्म हो जाती है । यह चेतन अवस्था है । अचेतन है वो हमारे चित् की गहराई में होती है । जब हम साधना करने बैठते हैं तो हमें जिस बात का अनुमान भी नहीं था तो वो विचार आ जाते हैं । स्वप्न अवस्था में विचार आ जाते हैं । आप बड़ी अच्छी हालत में बैठे हैं कोई उत्तेजना नहीं है इस वक्त परंतु यहां अचानक क्रोध का संस्कार कहाँ से उत्पन्न हुआ ? भीतर गहराई में जो संस्कार पड़े हैं वह जागृत हो जाते हैं । तो इन सब से हमें निवृत्त होना है । जब यह संस्कार खत्म हो जायेंगे तब संकल्प विकल्प खत्म होंगे । संकल्प विकल्पों कि अभी चिंता मत किया कीजिये । चिंता किया करें कि मेरा ईश्वर के साथ प्रेम क्यों नहीं होता है, क्यों नहीं बढ़ता है ? मुझे भीतर में क्यों नहीं शांति मिलती है ? क्यों आनंद नहीं मिलता है ? मेरे

चरित्र का क्यों निर्माण नहीं होता है ? मैं क्यों किसी की सेवा नहीं करता ? क्यों मेरे में अहंकार है ? क्यों मेरे में दीनता नहीं आती ? परमात्मा के गुणों को अपनाना होगा । गुरु के चरणों में समर्पण करना होगा । आत्मा के गुणों को अपनाना होगा और वैसा बनना होगा । जब तक वैसे नहीं बनते हैं, तब तक चलते रहे, रास्ता बहुत लम्बा है । गुरु महाराज कहा करते थे कि संसार के रास्ते पर चलने वाला व्यक्ति यदि थकावट अनुभव करता है तो वह भाग्यशाली है, यानि कि उस इंसान के साथ सुख नजदीक रहता है और समझ लेता है कि इसमें कोई सार नहीं । सही ढंग से रास्ता चलने वालों को समझ आ जाती है कि यह थकावट है वह भाग्यशाली है परन्तु परमार्थ के रास्ते पर कभी थकावट नहीं आनी चाहिए । यहां तक कि आपको गुरु के दर्शन हो जायें तब भी रास्ता चलते चलिए क्योंकि इसका कोई अंत नहीं है परमात्मा की सुंदरता, इतनी विशाल है, परमात्मा का प्रेम इतना अथाह है कि आज तक किसी ने उसका अंत नहीं पाया । इसलिए इस रास्ते पर कभी थकावट नहीं चाहिए । संतुष्टि कभी कभी अहंकार का रूप ले लेती है कि मैं तो बहुत बड़ा साधक बन गया । मुझको तो बडा आनंद आता है । मेरे पास बैठे रहे लोगों को भी शांति मिलती है । बस दो चार शिष्य हो गए तो उन्होंने भी अगर तारीफ में दो चार शब्द कह दिए कि आप बहुत बड़े हैं तो भीतर में एक ऐसा संस्कार बनता है कि जिससे मुक्त होना तो बहुत ही कठिन है । यह एक सूक्ष्म साधारण अहंकार है । स्थूल से तो हम मुक्त हो सकते हैं परन्तु सूक्ष्म अहंकार से मुक्त होना बड़ा कठिन है । ईश्वर की कृपा तो तभी हो सकती है जब विचारों से मुक्त होने के लिए प्रार्थना करें और प्रयत्न करें । प्रार्थना के साथ विरह उत्पन्न होना चाहिए, व्याकुलता उत्पन्न होनी चाहिए । जब तक विरह और व्याकुलता उत्पन्न नहीं होगी तब तक मन स्थिर नहीं होगा । और यह इतना कठिन है कि बिना ईश्वर कृपा के प्राप्त नहीं होता । इसलिए बार बार ईश्वर के चरणों में रो-रो कर प्रार्थना करनी चाहिए कि “हे प्रभु ! बिना आपकी कृपा के मैं इस भवसागर से पार नहीं हो सकता” । जब तक संस्कार है जब तक यह संकल्प विकल्प है समझ लेना चाहिए कि भव सागर का किनारा अभी दूर है । इसके पार होने के लिए बार बार ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करते रहना चाहिए । यही गुरु के चरण पकड़ना है । चरण पकड़ने का मतलब है कि हम रोए, प्रार्थना करें, कि प्रभु हमसे कुछ नहीं होता, जब तक आपकी दया नहीं होगी, जब तक आपकी कृपा नहीं होगी, हमारा उद्धार नहीं होगा । यह सरल तरीका है साधना करने का ।

ईश्वर आप सब का भला करें

(४)

दिनचर्या कैसी हो

(प्रवचन पुज्य भाई साहब करतार सिंह जी)

(मथुरा, सायं २४-३-८४)

(संदर्भित भजन नामदेव जी का)

मैं अंधुले की टेक तेरा नाम खुद कारा ॥
मैं गरीब, मैं मसकीन, तेरा नामु है अधारा ॥ रहाउ ॥
करीमा, रहीमा, अलाह तू गनी ॥
हाजरा, हजूरी, दरि पेसि तूं मनीं ॥ १ ॥
दरिआउ तू दिहंद, तू बिसीआर तू धनी ॥
देहि लेहि एक तूं दीगर को नहीं ॥ २ ॥
तू दानाँ तू बीनाँ मैं बिचरु किया करी ॥
'नामे' चे सुआमी बख्तंद तुं हरी ॥ ३ ॥

(नामदेव)

सभी संतों का कथन है कि ईश्वर के भजन करने से जीवन मरण के चक्र से हम मुक्त हो जाते हैं । इसको हम अपने जीवन में देखें कि हमारे जीवन मरण का चक्र कब छूटता है । मनुष्य का विस्तार हो रहा है सभी ओर से । अंग्रेजी में (Evolution) कहते है । जो कुछ हम इस वक्त है , वह विस्तार के पथ पर एक पड़ाव है । आगे की प्रगति हो सकती है, आशा रख सकते है और वहाँ से गिर भी सकते है । इस पथिक का ध्येय क्या है कि स्वतंत्र हो जाए, निर्माण पद को प्राप्त करें । जन मरण के चक्र से हमेशा के लिए छूट जाए, हमारी आत्मा परमात्मा में लय हो कर, हम परमात्मा स्वरूप हो जाए । भिन्न भिन्न तरीकों से कहने की बात है, वास्तव में मनुष्य यही चाहता है कि उसका मन जिन जिन कांटों में फंसा है उनसे वो छूट जाए तथा ईश्वर के चरणों का प्रेम मिल जाए ताकि हमारी यात्रा सफल हो अर्थात हमें मोक्ष मिले । मोक्ष किस बात की ? स्वतंत्रता किसी बात की ? भीतर में सोचिए कि क्या हम स्वतंत्र हैं ? आप पाएंगे कि आप परतंत्र हैं, बंधे हुए हैं, अपनी आदत की जंजीरों से । उनसे छूट नहीं पा रहे हैं । हम अपने स्वभाव को बदल नहीं रहे हैं, चाहते हुए भी कोई परिवर्तन नहीं आ रहा है । कहते हैं कि गुरु कृपा करें, इश्वर कृपा करें, और कोई ऐसा यंत्र मंत्र मिल जाए जिससे हमें संसार सागर से मुक्ति मिल जाए । पर ऐसा तो होगा नहीं । स्वतंत्रता के लिए

मनुष्य को जैसा कि भगवान ने गीता में कहा है दो ही बातें मुख्य रूप से करनी है । (१) कर्तव्य परायण होना और (२) ईश्वर परायण होना । जब तक व्यक्तित्व कर्तव्य परायण नहीं होता है तब तक वह स्वतंत्र नहीं हो सकता । भजन भी हम कर करते रहे परन्तु धर्म का पालन नहीं करते है , शास्त्र के नियमों का पालन नहीं करते हैं, शरियत (कर्मकांड) के रास्ते पर नहीं चलते हैं तो स्वतंत्र होना कठिन है । हो सकता है कि कुछ प्रेमी ऐसे होते हैं कुछ आशिक ऐसे होते हैं जिनके हृदय में विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है । वे प्रेम द्वारा इश्क के द्वारा अपने संस्कारों को धो डालते हैं । परंतु सामान्य व्यक्ति के लिए तो यह जरूरी है कि वह धर्म का पालन करें ।

गीता में यही समस्या है अर्जुन के सामने । वे शास्त्रज्ञ हैं, महापुरुषों की संगति में रहकर उन्होंने विद्या ग्रहण की है, बुद्धिजीवी है, विवेकशील हैं, भीतर में करुणा भी है, एक अच्छे व्यक्ति का जो स्वभाव होना चाहिए वह उनमें है । परन्तु जब समस्याएं सामने आती है तो अच्छे अच्छे व्यक्ति अपना संतुलन खो बैठते हैं । परमात्मा किसी की परीक्षा न ले । जब संकट आते हैं, जैसे बैठे बिठाए किसी ने झूठा मुकदमा कर दिया, फौजदारी, तो मुसीबत में पड़ गए । हमें भले लोग हैं कचहरी भी जाना नहीं चाहते । आप जानते हैं कि वकील लोग क्या क्या करते हैं । परन्तु आप फंस जाते हैं, रोते हैं, उस वक्त दोष देते हैं अपने कर्मों को । कई और प्रकार की भी बातें करते हैं । धर्म कहता है कि किसी को दुःख नहीं देना चाहिए । कचहरी में जाकर झूठ नहीं बोलना, रिश्वत लेना और देना नहीं चाहिए । अब सोचिये इंसान फंसा हुआ है, यदि ऐसी बातें वह नहीं करता है, तो जेल जाता है, एक धर्म संकट में फंस जाता है । व्यक्ति खास कर वह व्यक्ति जो इस रास्ते पर चल रहा है वह झूठ नहीं बोलता है, किसी को दुख नहीं देना चाहता है, परन्तु वह इन झंझटों में फंस जाता है । ऐसी ही स्थिति अर्जुन की है । यह कृष्ण भगवान से कहता है कि मैं तो नहीं लड़ूंगा । मैं क्यों अपने गुरुजनों का वध करूँगा ? पिता सामान चाचा है, ताऊ है, भाई हैं, और अन्य महापुरुष हैं, क्या मैं उनके साथ लड़ाई करूँ ? यदि मैंने विजय प्राप्त कर भी ली तो उसका क्या लाभ है ? इतना खून बहा कर यदि मुझे राज मिलता है तो मेरे जैसा पापी कौन होगा ? मुझे तो ऐसा राज्य नहीं चाहिए । भगवान साथ हैं ईश्वर कृपा से परन्तु ऐसी बातें हम सब पर आती है । ऐसी परिस्थिति में भगवान अर्जुन को क्या प्रेरणा देते हैं क्षत्री बनो, राज योग को अपनाओ, तुम्हारा जो कर्तव्य है उसका पालन करो, कर्तव्य करते समय राजा हरीशचंद्र की तरह मोह का त्याग करना होगा । चाहे बेटे का मृतक शरीर आता है उससे भी कर लेना है । धर्म क्षेत्र में जाकर, जो गुरु कह रहा है, जो

शास्त्र कह रहा है, जो बुद्धि कह रही है, उसके अनुसार भगवान कह रहे हैं कि तू अपना कर्तव्य कर ।

यह प्रेरणा भगवान की हम सबके लिए है । कर्तव्य परायण होना चाहिए । जो व्यक्ति पढ़े लिखे है शास्त्रों के अनुसार उन्हें अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए । जिन्होंने गुरु धारण कर लिया है उन्हें गुरु के आदेशों का पालन करना चाहिए । जिनमें ये दोनों बातें नहीं है उनको भीतर से अपनी आत्मा की आवाज को सुनना चाहिए । यह भी नहीं हो सकता तो जो बुद्धि कहे करना चाहिए । परन्तु ये सब बातें पाप और पुण्य, लाभ-हानि, आदि दुविधा में फंसा कर हमें संस्कारों में जकड देती है । आप कहेंगे कि ये कैसे हो सकता है कि धर्मानुसार काम किया जाए फिर भी संस्कार बनते हैं । इन संस्कारों से छूटने के लिए भगवान ने बड़ी आसान सुलभ साधन बतलाई है कि धर्म के अनुसार काम करो परंतु कर्म फल के साथ आसक्ति अर्थात मोह नहीं रखना चाहिए यानि कोई आशा नहीं रखनी चाहिए । विजय प्राप्त हो गई है, ठीक है, प्रभु तेरी कृपा है, ऐसा नहीं हुआ कि पराजय हुए हैं । प्रभु आप इसमें खुश हैं तो मैं भी इसमें खुश हूँ, ऐसा स्वभाव बन जाए । यदि कोई आशा रख कर काम करते हैं, कि इसका यह लाभ होगा, इसकी यह हानि होगी, तो संस्कार बन गए । उनसे नहीं बच सकते । जन्म - मरण के चक्कर से नहीं छूट सकते हैं । आज का मनोवैज्ञानिक भी यही कहता है कि मनुष्य को ऐसे जीवन व्यतीत करने चाहिए जैसे नदी का पानी । वह निरंतर बहता रहता है उसी प्रकार जीना चाहिए । अर्थात जो पानी बह गया उसके साथ कोई आशा नहीं रखनी चाहिए । (Flowing water of the river) ब्रह्मज्ञानी, निर्मल ते निर्मला, मैल न लागे जला । इंसान को वर्तमान में रहना चाहिए । जो गुजर चुका है उसके प्रति खेद नहीं करना चाहिए । कोई आसक्ति नहीं होनी चाहिए । भविष्य के लिए स्वप्न नहीं देखने चाहिए । आज का मनोवैज्ञानिक यही सिखाता है किन्तु भगवान ने तो हमें शुरू में ही यह बातें सिखा दी है । हमारे शास्त्र भी यही सिखाते हैं कि मोह ग्रस्त नहीं होना चाहिए मोह का मतलब यह है कि बच्चों से प्रेम तो करें परंतु उन्हें ईश्वर का समझ कर करें । लोग बाग मोह का मतलब नहीं समझते हैं । मोह यह भी है कि अधिकांश व्यक्ति अपने विचारों से बंधे हुए है । अपने आदर्शों से बंधे हैं । भगवान के अनुसार वे व्यक्ति कर्मफल के साथ बंधे है । किसी ने ने गाली दी । वह गाली देने वाला तो चला गया मगर उसका जो घाव लगा भीतर में उसको आप ठीक ही नहीं होने देते हैं । सोचते रहते हैं उसके बारे में कि कैसे बदला लूं, वह कौन है, उसका बाप कौन है ? आदि । उसी एक बात को लेकर सोचते रहते हैं जब जब इस घटना की याद जीवन में आती है तब तब यही सोचते रहते हैं ।

तो इस तरह संस्कार तो बन नहीं जाता है । आपके मन में बदले की भावना आ गई तो संभवत राक्षस बनेंगे । पशु यही करता है । वो बदला लेते हैं । तो वह बदले की भावना कहां से आई । यह संस्कार किसने बनाए ? रेशम के कीड़े की तरह जो अपने भीतर से रेशम का धागा निकालता है और अपने आपको बांधता रहता है और उसी में मर जाता है । यही हालत मनुष्य की । बड़ा दुखी है मनुष्य और इस दुःख का कारण यही है कि वह सोचता बहुत है । अकारण सोचता है । इसका मुख्य कारण यह है कि अपने कर्मफल के साथ और दूसरे के कर्मफल के साथ हमारी आसक्ति होती है । साधना करते करते जब मनुष्य के भीतर में प्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और उसके बिना रह नहीं सकता है परवाने (शलभ) की तरह वह शमा (दीपक) में जलता रहता है तब भगवान कहते है कि कर्म धर्म सब मुझे अर्पण कर दो । उससे पहले नहीं । उससे पहले तो कर नहीं सकता । उससे पहले जितना समर्पण होगा झूठा होगा । समर्पण का मतलब यह है कि शरीर मेरा नहीं, मन मेरा नहीं (मन में बुद्धि आदि सब आ जाते हैं) धन मेरा नहीं । इस शरीर में जो है आत्मा है वह परमात्मा की है, तो मेरा क्या है ?

एक "मैं" अपना होता है जिसको "अहं" बोलते हैं । 'Ego' बोलते हैं । यह सब खत्म हो गया दे दिया प्रभु के चरणों में, अब क्या रह गया ? जब इस स्थिति पर आता है तो ऐसे व्यक्ति को भगवान स्वयं या किसी महापुरुष के द्वारा समर्पण की प्रेरणा देकर अपने में समा लेते हैं । यह समर्पण का भाव गीता के अठारहवें अध्याय में है । जब किसी व्यक्ति का अंत समय होता है, उसकी अंतिम घड़ी होती है, तब उसको होश नहीं होता है । उस वक्त यह अध्याय पढते हैं । इसको तो जीवन में पढ़ना चाहिए और उसका मनन करना चाहिए । शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को भागवत सुनाई मरने से पहले ताकि वह मरने से पहले मर जाए यानी उसका अहंकार खत्म हो जाए और हम भागवत का पाठ करते हैं जब व्यक्ति मर जाता है । साधक को तो कभी न कभी मरना ही है परन्तु अपनी मर्जी से मरना चाहिए । यों तो संसार में मृत्यु होने पर सभी मरते हैं परंतु सच्चे जिज्ञासु को जीवन में ही मरना है अर्थात अपनी इच्छा कुछ नहीं हो । ईश्वर परायण हो जाना है, गुरु परायण हो जाना है । मगर ऐसा केवल कहने मात्र से तो नहीं होगा । उसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी । महापुरुष भिन्न-भिन्न तरीके से तैयार कराते हैं । यही शुकदेव जी महाराज राजा परीक्षित को उपदेश देते हैं अपने पिता व्यास जी को भी उपदेश देते हैं । इनको कितनी तपस्या करनी पड़ी । जन्म से ही ज्ञानी थे परन्तु भीतर में अहंकार था । राजा जनक के पास पिता ने भेजा है और कहा है कि जाओ कुछ ज्ञान का उपदेश लो । जाते हैं परन्तु अपनी विद्या का अहंकार था । साधारण तरीके से

गए हैं । राजा जनक ने परवाह नहीं की । वापिस आए हैं और पिता से कहा कि उन्होंने तो कुछ पूछा ही नहीं । पिता ने कहा कि वे इस तरह ज्ञान नहीं देते हैं । किसी से कुछ ग्रहण करना होता है तो दीनता अपनानी होती है । तुम राजा के महल के पीछे चले जाओ वहां भोजन के बाद जूठी पत्तलें फेंकी जाती है वहाँ खड़े हो जाओ । बड़ा कठिन है अपमान सहन करना और इस प्रकार का अपमान सहन करने के लिए कितने महान व्यक्ति को कि उस जैसा शायद ही भारत ने दूसरा पैदा किया हो, उसको कहा जाता है कि उस स्थान पर ठहरो जहाँ जूठी पत्तलें तुम्हारे सिर पर गिरे । यह भी ईश्वर कृपा होती है अन्यथा प्रत्येक व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता । साधारण सा अपमान होता है तो सहन नहीं होता है । हृदय में लगन थी, गए हैं । कई दिन खड़े रहे, जूठी पतली सिर पर गिरती रही । राजा जनक ने ऊपर से देखा कि एक व्यक्ति खड़ा है और कोई दुःख नहीं मनाता है । यह मन की गढ़त करना है । यह अहंकार को तोड़ना है । दीनता आनी चाहिए । कहने से समर्पण नहीं होगा । तो राजा जनक ने कहला कर भेजा कि इसको महल में आने दो । फिर और परीक्षा ली है । कहने का मतलब यह है कि बातों से अहंकार नहीं टूटता हैं इसके लिए तप करना पड़ता है । पूज्य लाला जी महाराज (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) का कहना है कि लोग बाग जंगलों में जाते हैं, तपस्या करते हैं, आग के सामने बैठते हैं, गर्मी के दिन हैं, शरीर को कष्ट देते है परन्तु हमारे यहां की तपस्या ऐसी नहीं है । लोगों की लानतें गालियां अपमान आदि को सहना, दूसरे अपनी त्रुटियों को देखकर इसे निवृत होने का प्रयास करना । ये हमारे यहाँ का तप है । व्यक्ति को इसके लिए तैयारी करनी पड़ेगी । साधना के साथ साथ तपस्या सबको करनी होगी । केवल बैठकर दस या पंद्रह आँखे बंद करके पूजा में बैठने जाना यह समझ लेना कि हम लोग तो रोज पूजा बैठते यह काफी नहीं है । जितना बैठते हैं उतना लाभ होगा परंतु भीतर में जितनी आशा रखते हैं वह नहीं होगा । ईश्वर कृपा से जैसे भगवान कृष्ण मिले और उन्होंने अर्जुन को बना लिया । इसी प्रकार हमें भी कोई ऐसा गुरु मिल जाए तो भले ही हमारा उद्धार हो जाये, अन्यथा इस संसार से जैसे रविदास जी कहते हैं कि ईश्वर के भजन से जन्म - मरण का चक्कर छूट जाएगा । यह कोई बच्चों का खेल नहीं है ईश्वर से भजन का मतलब यह है कि ईश्वर का ही हो जाना । रविदास जी का जीवन देखिये कि कितनी गरीबी है जूते गाँठते हैं, चमार हैं, कुछ गलती हो गई पहले जन्म में ब्राह्मण थे । उसी जन्म में गुरु की नाराजगी हो गई । दूसरे जन्म में चमार बने । जिस वक्त पैदा हुए हैं तो रोते थे, पांच छः दिन रोते ही रहे, दूध नहीं पीते थे । स्वामी रामानंद जी वहां से गुजरे हैं । माता पिता उनके चरणों में गिर गए हैं कि बालक दूध नहीं पीता

है । स्वामी जी आए है । देखा हैं बच्चे को तो, गुप्त भाषा में रविदास जी ने कहा है कि घबरा नहीं, यह तो कर्म गति है । तुम महान हो । इसी जनम में छुटकारा हो जाएगा । तो बच्चा दूध पीने लगता है । जीवन भर चमार का काम करते रहे हैं । इनकी सेविका राणी झाला एक बड़ी अनमोल हीरा देकर गई है । और कह गई है कि इसे बेंच लीजियेगा । तो यदि बेंच देते तो उससे आने वाली कई पीढियां उस धन को अच्छी तरह से खर्च करते तो भी खत्म नहीं होता । एक वर्ष के बाद रानी फिर आई है, वैसे ही गरीबी की हालत में देखा, कहा कि महाराज मैं तो आपकी सेवा में एक हीरा रख गयी थी । बोले देख लो, जहाँ रख गई थी वही पड़ा होगा । ये हैं मोह रहित अवस्था । तनिक भी मोह नहीं । घर में बड़ी कठिनाई है । बड़ी कठिनाई से जीविका चलती है । परन्तु ईश्वर के नाम में इतना रस है कि हीरे की कोई चिंता नहीं । ये सब बातें भजन में आ जाती हैं । मनुष्य का कर्तव्य, गुरु का सत्संग और गुरु का बताया हुआ रास्ता यानी साधना, ईश्वर का भजन करना, ये तो सबको करना ही है । कर्तव्य को निभाना कठिन है । सब महापुरुष परीक्षा लेते हैं ईश्वर भी लेता है । जिसको बनाना होता है, ईश्वर उसको कष्ट दे देता है । कबीर साहब कितने महान फकीर थे । घर में साधु आते हैं । घर में खाना नहीं है । हमारा धर्म रहा है कि कोई अतिथि आए तो वह ईश्वर स्वरूप है, उसको खाना अवश्य खिलाना है, उसकी सेवा करनी है । माँ, लोई जी को भेजा जाता है कि बनिये के पास जाओ । बनिया कहता है कि जितनी रसद चाहिए मैं उधार दे देता हूँ परन्तु एक बात करनी होगी । वह मन का साफ नहीं है । कितना महान संकट है । उधर अतिथि की सेवा करनी है, इधर सतीत्व है । कबीर साहब के पास आती है “मैं ऐसा कह आई” । “ठीक कहा” । हर व्यक्ति ऐसी बातों को नहीं समझ सकता परन्तु माँ लोई सफल रही । बनिये का भी उद्धार हुआ और साधु सेवा भी । वैसे भी हमारी संस्कृति में कहा जाता है कि पता नहीं कब ईश्वर किस रूप में आ जाए । विवेकानंद जी ने इसे बड़ा स्पष्ट किया है । आप भले ही उस भिखारी को देखें कि वह शरीर से बलवान है, वह कमा सकता है, परन्तु आपको ऐसे शब्द कभी नहीं कहना चाहिए । आपसे कुछ बन पडता है तो कुछ न कुछ उसे दे ही देना चाहिए । यदि नहीं है आपके पास तो उससे कठोर शब्द नहीं कहें । हाथ जोड़ कर नम्रता से कह दे कि भाई हम कुछ नहीं कर सकते । ऐसी बातें हम सबके जीवन में घटित होती है । अभी तीन चार दिन की बात है, मेरे एक मित्र है अक्सर मेरे पास आया करते हैं । वे कुछ सेवा करा रहे हैं । स्त्री आई है, कहती है कि यह २० हजार रुपये ले लो और मेरा नाम थोड़ा सा लिखवा दो । वे कहते हैं कि हमारे पास रुपया काफी है आपके रुपये की जरूरत नहीं । देना चाहती हैं तो ठीक है परन्तु नाम नहीं लिखेंगे । हमारी

संस्था ने यह निर्णय लिया है कि नाम किसी व्यक्ति का नहीं लिखा जाएगा । भेंट जिसको देनी है वह संगत की तरफ से होगी । उसने बड़ा कहा, बार बार कहा । २० हजार की रकम है । साधारण व्यक्ति है मगर उन्होंने नहीं माना । कहने लगे मुझे जल्दी है, एक मित्र के पास जाना है, वे मेरे पास आ रहे थे । बाहर दोनों निकल आए है । ताला लगाया है । एक क्षण भर ही तो लगता है ताला लगाने में । देखा है तो स्त्री गायब । तो पता नहीं ईश्वर या जिसे आप प्यार करते हैं कब किस रूप में आ जाता है और ये ऐसी बातें हम सब के साथ होती है ।

नामदेव जी को एक पठान के रुपये भगवान मिले है । उन्होंने अपनी एक रचना में (जो इस प्रवचन के प्रारंभ में है) उस घटना का वर्णन किया है । बड़ी सुन्दर पगड़ी बांधी हुई है जैसे पठान बांधते हैं । उस पठान ने नामदेव जी को डांटा था और कहा था कि यह गठरी उठाकर मेरे घर लेकर चलो । बड़ी सुन्दर रचना लिखी है । उसमें भगवान की बड़ी उपमा दी है । आपकी पगड़ी कितनी सुन्दर है आपके जो आदेश दिया है गठरी उठा कर सर पर लेकर चलो, इन शब्दों में कितनी मधुरता है । गठरी भारी थी, उठा कर लेकर गए हैं । बड़े प्रेम विभोर हो रहे हैं । शुक्र है कि भगवान इसी रूप में आए है । घर पहुंचे हैं तो कहा है कि तुम ठहरो, मैं आता हूँ । भगवान गायब हो गए । यह किस्से कहानियां नहीं है, यह वास्तविकता है । ये घटनाएं हमें प्रेरणा देती है कि हम अपना चरित्र निर्माण कैसे करें । मनुष्य के हृदय में करुणा उत्पन्न होनी चाहिए, दया उत्पन्न होनी चाहिए सहानुभूति होनी चाहिए, सेवा का भाव होना चाहिए, दीनता होनी चाहिए, तभी तो हम अधिकारी बनेंगे । प्रभु को भाव प्रिय है, प्रेम प्रिय है, दीनता प्रिय है । अहंकारी मनुष्य को दर्शन तो क्या, जो साधारण हमारे भीतर में प्रेम होना चाहिए, साधना में जो रस आना चाहिए, वह भी नहीं आता । उसके लिए तो दोषी हम सब है । जिस वक्त हम साधना पर बैठते उस वक्त यह प्रत्येक व्यक्ति को करना चाहिए । चाहे आँखें बंद करने का अवसर न मिले कोई बात नहीं । गंगा स्नान करना चाहिए अर्थात उस समय हमारा हृदय पवित्र होना चाहिए । कोई इच्छा नहीं, कोई मोह नहीं, कोई आशा नहीं, कोई द्वेष भाव नहीं, मन में कोई निंदा नहीं, घृणा नहीं, क्रोध नहीं, अहंकार नहीं । हम तो उस अफसरों के भी अफसर के पास जा रहे हैं । हमें बड़े दीन होकर, बनकर प्रार्थना, साधना करनी चाहिए । इसके लिए सरल उपाय यह है कि भक्तों की बानी खूब पढनी चाहिए । थोड़ी देर आँख बंद करके बैठे । उसके बाद फिर कृतज्ञता प्रकट करने के लिए महापुरुषों की वाणी फिर पढ़िए । उस वाणी में ईश्वर का गुणगान होता है । उस वाणी में महापुरुषों का अपना जीवन होता है । उस वाणी में कुछ विशेष आनंद होता है । गुरुदेव कहा करते थे हमेशा महापुरुषों की वाणी

पढ़नी चाहिए । ये जो कविताएं होती है, कवियों की, उनको नहीं पढना चाहिए । गीता हैं, रामायण ही, कुरान शरीफ है, ग्रन्थ साहिब है, ऐसी बानी पढ़नी चाहिए । तो ईश्वर भजन का मतलब केवल राम राम करना नहीं है । राम राम के साथ प्रेम करना है । प्रेम होगा उनके उपदेशों का पालन करने से । मन बार बार दुनिया की ओर जाएगा । राम के चरणों को छोड़ेगा । बार बार प्रयास करना है कि राम के चरणों में मन लगे ।

ये चार बातें प्रत्येक व्यक्ति को करनी चाहिए । (१) राम राम करेन (यानि उस नाम का जप करे जो उसे गुरु से मिला है) (२) ईश्वर के साथ प्रेम करें, (३) ईश्वर या गुरु के जो आदेश है उनका पालन करें एवं (४) अपने मन में ईश्वर को ऐसा सिजदा (नमन) करें कि सिर फिर उठे ही नहीं यानि गुरु के चरणों को छोड़े नहीं । तब जाकर कुछ साधना में रस आएगा । आजकल सभी व्यक्ति अपने सांसारिक कार्यों की इतना व्यस्त हैं कि करीब करीब सभी कहते हैं कि भजन के लिए समय नहीं मिलता । बहिने लिखती हैं कि बच्चों को सुबह तैयार करना होता है, उनके पिताजी को तैयार करना होता है, दफ्तर में जाना होता है । बाद में घर का काम होता है । फिर इतनी थक जाती है कि सो जाती हैं । शाम को फिर वही हालत है । कोई समय ईश्वर भजन के लिए नहीं मिलता है । इसी तरह पुरुष भी अपनी बात करते हैं । ये सब ठीक है हमारे यहाँ ये नहीं कहते कि घर बार छोड़ दो, बच्चों की सेवा न करो, पति की सेवा न करो, पत्नी की सेवा न करो । नहीं,ये बात नहीं । आप इतने व्यस्त हैं कि आपको सब बातों के लिए समय नहीं मिल सकता है। प्रभु के सुमिरन के लिए समय नहीं मिलता न सही जो आप काम करते हैं वह ईश्वर का ही समझ कर, ईश्वर की याद में करें। इतना तो हो सकता है । कुछ और करने की जरूरत नहीं । माताएं हैं, बहिनें हैं, बच्चों को ये समझे कि यह भगवान का बाल रूप है । जिस प्रकार का काम आप वाणिज्य आदि करते हैं, आपके पास ग्राहक आता है, उसको ईश्वर रूप समझे । महात्मा गांधी कहते कि जो ग्राहक आपकी दुकान पर आता है तो ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर उस रूप में आया है । आप उसकी सेवा के लिए उतना ही पैसा उससे लें, जितना आवश्यक है उसके कपड़े न उतारें । उससे प्रेम से बात करें और ध्यान रहे कि यह ईश्वर का हीं रूप है । इसी तरह आप दफ्तर में रहते हैं, फाइलों का काम करते हैं तो ये ख्याल करके करें कि ईश्वर के चरणों में बैठे हैं और यह काम ईश्वर ने दिया है । जैसे अफसर को खुश करना है तो अफसरों के अफसर को खुश करने के लिए ठीक से काम करिये । ये नहीं कि उठे और बाहर जाकर ताश खेलनी शुरू कर दी, चाय पीनी शुरू कर दी, अखबार पढना शुरूकर दिया । शाम का वक्त हुआ तो फाइल लेकर बैठ गए तो ओवर टाइम करने के लिए, तो

ये तो नहीं चलेगा। ये दलील देना कि हमें समय नहीं मिलता ये गलत है। जो काम करते हों उसे हीं ईश्वर का नाम समझ लीजिए, उसी को साधना समझ लीजिये। कहीं जाने की जरूरत नहीं। कहीं भागने की जरूरत नहीं। उसी काम को पूजा का रूप दे दीजिये।

भगवान विष्णु नारद जी से कहते हैं कि मेरे एक भक्त के पास जाओ और उसकी कुशलता पूछ कर आओ। वे जाते हैं और नारायण-नारायण कर के उसके पास पहुँचते हैं। वह उनकी सेवा करता है। कुछ दिन रहते हैं वहां, वह व्यक्ति अपने काम में बड़ा हीं व्यस्त है। सुबह उठकर एक बार कह देता है 'नारायण' और सोते वक्त एक बार कहते हैं 'नारायण'। इनको बड़ा दुःख होता है कि भगवान ने भेजा है कि जाओ उस व्यक्ति के पास। सोचा था कि वह तो भगवान का भक्त होगा, खूब नाम लेता होगा। यह सोचते हुए वापिस चले गए और भगवान से कहा कि आपने मुझे कहाँ भेज दिया। भगवान ने पूछा कि क्या बात है ? नारद जी बोले कि वह आपका भक्त है ? सुबह उठता है तो नारायण कह लेता है। रात को सोता है, एक बार फिर 'नारायण' कह लेता है। सारे दिन वह इतना व्यस्त रहता है कि उसको आपकी याद ही नहीं रहती। भगवान ने दो चार दिन के बाद नारद को एक कटोरा तेल का भरा हुआ दिया है और कहा है कि आप यह ले जाएं और विश्व की परिक्रमा करके मेरे पास लौट आये ध्यान रहे कि तेल न गिरने पाए। नारद जी कुछ ही कदम चले उनका ध्यान था तेल की तरफ की कहीं यह न बिखर जाए। कुछ हीं कदम चले कि वापिस आ गये और कहने लगे कि यह काम तो मेरे से नहीं होता। तो भगवान कहने लगे कि वह व्यक्ति तो तुमसे अच्छा है। वह कितनी लगन से काम करता है। इस लगन में उसको मेरी याद है। आप भी मेरी याद में जाते हैं तो यह काम कर सकते थे। कहने का मतलब यह है कि दलील देना (तर्क करना) कि हमारे पास समय नहीं है, नाम लेने का, यह ठीक नहीं है। जरूरी नहीं है कि आसन बिछा कर अगरबत्ती जलाकर आप बैठे और ईश्वर की आराधना करें। यदि ऐसा हो सकता है तो ठीक है नहीं तो हो सकता है तो आप काम को ईश्वर की पूजा का रूप समझ कर करिये, उसी में मस्त हो जाइए। जो भी व्यक्ति आपके संपर्क में आता है उसे ईश्वर का रूप समझिए। कुछ दिन ऐसा करेंगे, आप उसका शोषण हीं नहीं कर पाएंगे। कुछ दिन के बाद आप कहेंगे कि मेरी जेब में जो कुछ है मैं इसको भी लुटा दूँ। आपका मन ही नहीं करेगा कि मैं पैसों को जमा करके रखूं, घर में। आप मन ही मन सोचेंगे कि आज चार पैसे ज्यादा आए हैं मैं किस तरह गरीबों बांटकर फिर घर पहुंचूं। या आपकी पूजा हो गई, ईश्वर की सेवा आपने कर ली। बड़ी दीनता के साथ ही कोई मोह नहीं भीतर में आनंद है, रस है, सुख है, शांति है। रात को आपको

बड़ी अच्छी नींद आई । इससे अच्छी और साधना आपको क्या चाहिए ? गुरु महाराज ने इसको सर्वोत्तम साधना कहा है, तो ऐसे प्रेमियों को जो यह कहते हैं कि हमारे पास समय नहीं है इनको तनिक भी दुःख नहीं न मानना चाहिए । परंतु काटा बदलना है । जैसे गाडी का काँटा होता है, एक लाइन से दूसरी लाइन के लिए, इसी प्रकार सिर्फ अपने मन को बदलना है । थोड़े से होश के साथ अपना काम करना है । ये सब व्यक्तियों के लिए है । एक व्यक्ति के लिए नहीं है सबके लिए गुरु महाराज का प्रवचन है कि साधना किस प्रकार होनी चाहिए ? सुबह से लेकर शाम तक हमारा क्या प्रोग्राम निश्चित होना चाहिए । गुरुदेव के प्रवचन बार बार पढना चाहिए । साधना में केवल आँख बंद करके बैठने से विशेष लाभ नहीं होगा । इसके साथ साथ प्रेम भी ईश्वर के साथ करना होगा । अपने धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना होगा । अपने गुरु और ईश्वर के आदेशो का पालन करना होगा और निरंतर प्रयास करना होगा, जैसे भगवान ने कहा है कि वैराग्य और अभ्यास । संसार को धीरे धीरे छोडते चले जाना है । मन का जो मोह है, संसार से लगाव है, उसको धीरे धीरे छोडते चले जाना है । और ईश्वर के चरणों को पकड़ने का बार बार अभ्यास करना है । गुरु नानक देव ने तो यहां तक कहा है कि कोई कठिन तपस्या करने की जरूरत ही नहीं है, हंसते खेलते ही मुक्ति हो जाती है अर्थात साधारण जीवन व्यतीत करते हुए इंसान मुक्त हो सकता है । मुक्त होने का मतलब है, स्वतंत्र हो सकता है, अपने संस्कारों से मुक्त हो सकता है । उसमें वहीं गुण आ सकते हैं जो ईश्वर में है । लालाजी महाराज (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) कहा करते थे कि बचपन से ही अभ्यास करना चाहिए । उन्होंने बच्चों को ही अपनाया । बच्चों के साथ बैठे रहते थे । कहानियां सुनाया करते थे तथा सुना करते थे । गुरु महाराज (महात्मा श्री कृष्ण लाल जी महाराज) की सेवा में आपमें से बहुत से लोग रहे हैं । वे क्या करते थे ? कभी सिनेमा ले जा रहे हैं । कभी होली का मेला लग रहा है । सिकंदराबाद में, वहां मेले में जा रहे हैं । यदि सत्संग में यात्रा में साथ गए हैं तो भिन्न-भिन्न स्थान पर ले जाकर वहां दर्शन कराए हैं । चौबीस घंटे आँखे बंद करके नहीं बैठाया है । उन्होंने जीवन में मनोरंजन दिया है । फिर मित्रता का व्यवहार किया है । बच्चों को गोद में खिलाया है । यहां लड़कियां बैठी हैं, उनको पढ़ाया । ये साधना थी उनकी । हमें अपने पांव पर खड़ा कराया है । कभी भी यह नहीं कहा कि आप सुबह से शाम तक आँखे बंद कर के बैठे रहिये । नहीं, अपने प्यार से ही, अपने प्रेम से ही, जो कुछ इस वक्त हैं, ये सब उनके प्रेम का सत्कार है । एक नहीं हम में से कई एक यहां बैठे हैं ।

तो जीवन को भगवान के बताये हुए रास्ते पर चलाएं । दो ही मुख्य बातें कर्तव्य परायण और ईश्वर परायण (इसका मतलब गुरु-परायण भी हैं) । एक ही बात है मुख्य, प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य को पहचानना चाहिए । हम अज्ञानी हैं, अंधकार में है । वैसे तो हम कहते हैं कि हम बहुत पढ़े लिखे हैं परंतु व्यवहार में आप देखेंगे कि हम सोये हुए हैं । हमें अपने शरीर के प्रति सतर्कता नहीं, जागरूकता नहीं । मन सदैव अशांत रहता है, सभी नशा किए हुए हैं । इस अशांति में ही जीते जा रहे हैं । कोई कोशिश ही नहीं कि उस अशांति को दूर करने की । बुद्धि तर्क करती रहती है परन्तु इसमें सत्यता के गुण नहीं आ रहे हैं । हम जानते हैं कि हमारी बुद्धि विवेक शील नहीं है । वैराग्यशील नहीं है । परन्तु सोए हुए चल रहे हैं । आपने कई लोग देखे होंगे कि वे नींद में भी चलते फिरते हैं । वही हालत हमारी है । यह अज्ञानी की हालत है । दुखी है, पीड़ित हैं, परन्तु दुःख को दूर करने का किसी के मन में ख्याल उत्पन्न नहीं होता । यदि ख्याल उत्पन्न हो जाए तो व्यक्ति कोई न कोई उपाय ढूंढेगा और वह सुखी होगा । उसको आनंद मिलेगा, उसको रस मिलेगा, उसको शांति मिलेगी । हम सब यही शिकायत करते रहते हैं कि साहब हमारा मन बड़ा दुखी है । कारण तो ढूंढना चाहिए । महात्मा बुद्ध भी यही कहते थे । पहले तो ईश्वर कृपा से हमें यह बोध हो जाए कि हम दुखी हैं । परन्तु समझ कर, अपना मन लगा कर, बाद में उसपर मनन करो । यह भी सत्संग है । शारीरिक सत्संग का भी महत्व है । कबीर साहब ने लिखा है कि गुरु की सेवा में रोज जाना चाहिए । हम जो मंदिर जाते हैं, गुरुद्वारे जाते हैं, मस्जिद में जाते हैं, इसीलिए जाते हैं । परन्तु यदि हमारे गुरु हमारे पास है तो उसकी सेवा में रोज जाना चाहिए । वह कहते हैं कि रोज नहीं तो सप्ताह में एक बार जाए, सप्ताह भी नहीं जा सकते तो महीने में एक बार जाए । कहते कहते उन्होंने कहा कि एक वर्ष में भी नहीं जा सकते तो जीवन में एक बार जाना चाहिए । मैंने सत्संग में कई बार निवेदन किया है परन्तु मेरे में ही कमी है जो मेरी बात कोई मानता नहीं । सत्संग के दिनों में (वैसे तो रोज ही परन्तु सतसंग के दिनों में विशेष कर) बोलना नहीं चाहिए केवल परमात्मा या गुरु का ध्यान हो और मन में उनकी मधुर स्मृति हो । जरूरत पड़े तो दो चार शब्दों का प्रयोग कर लिया अन्यथा मौन रहे । कई जगह पर तो ऐसा भी है कि जहां सत्संग किया जाता है उसकी चारदीवारी से साधक बाहर नहीं जाता, क्योंकि वहां वातावरण ईश्वरीय बन जाता है । आप जब उस वातावरण से बाहर जो आपको वहाँ प्राप्त होता है वह सब खत्म हो जाता है । यह सब भाइयों को, बहनों को कोशिश करनी चाहिए कि कम से कम बोलें और अगर हो सके तो सत्संग भवन से बाहर नहीं जाना चाहिए क्योंकि मन में चंचलता हो जाती है

। मन का स्वभाव है कि विविधता चाहता है एक खिलौने से बच्चा कुछ देर खेलता है फिर रोने लगता है । माँ उसको दूसरा खिलौना दे देती है । इसके भिन्न-भिन्न प्रकार के खिलौने चाहिए । पूजा में मुश्किल से दस मिनट या आधा घंटा बैठते हैं । इस थोड़े समय में हो सकता है कि मन लगे या ना लगे । यदि मन लगा तुरंत ही विचार उठने लगा । आज बाजार चलेंगे, आज मिठाई खाएंगे, दूध पीयेंगे, आज यह करेंगे आज यह करेंगे वह करेंगे । सब किया कराया खत्म हो गया । ये सब के घरों में होता है । इधर पूजा से उठे, उधर टेलीविजन देखा, खाने पर बात की, किसी का विरोध, किसी को भला बुरा कहा । उससे जितना लाभ होता है वह सब खत्म हो जाता है । इसलिए मन पर रोक लगाने की आवश्यकता है । यही गुरु का आदेश पालना है । गुरु कहता है कि ईश्वर के ध्यान में रहो । आप सब मन को इधर उधर घुमाते हो तो ध्यान तो खत्म हो गया । आपने गुरु के आदेश का पालन क्या किया ? तो साधना के महत्व को समझो । जीवन के महत्व को समझो । जीवन के महत्व का मतलब यह है कि परमात्मा ने बड़ी कृपा करके, यह मनुष्य चोला दिया है । इसी में रहते हुए अपना उद्धार करना है । अपने संस्कारों से मुक्त होना है, अपनी वृत्तियों से, अपनी आदतों से मुक्त होना है तथा हृदय में आनंद हो, सुख हीं सुख हो, शांति हीं शांति हो और वह सुख, आनंद रस आपको भी अनुभव करना है एवं उसको बांटना है । ये हमारा कर्तव्य है । यह हमारे गुरु का आदेश है और हमेशा से महापुरुषों ने आदेश दिया है । मनुष्य ने इसका विरोध किया है और हम भी उसी प्रकार के मनुष्य हैं । महापुरुष आते हैं, हमें जगाते हैं । कबीर दास जी कहते हैं कि मैंने पुकार पुकार कर कहा है परन्तु कोई भी नहीं सुनता । गुरु महाराज जी ने कहा, पूज्य लालाजी महाराज ने कहा , बड़ी कोशिश की, परंतु एक व्यक्ति भी तो न बन सका जैसा मैं बनाना चाहता था । निराशा हुई, उस निराशा के जिम्मेदार कौन हैं, मैं और आप और सब । कोई ऐसा शब्द कह गया हूँ जो आपको अच्छा न लगे, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ ।ॐ॥

तीन बंद लगाकर अंतर में घुसें !

(प्रवचन भाई साहब करतार सिंह जी)

मुजफ्फरपुर,२२-१२-८५ (प्रातःकाल)

पुस्तक में पढ़ा गया:- "अभ्यासियों को तीन बातें अवश्य करनी चाहिए । जहां तक हो, गुरु का सत्संग करें ।

व्याख्या:- हम सब के लिए कुछ बातों का पालन करना आवश्यक है । जिनके पालन के लिए गुरुदेव कहा करते थे हम उन बातों को पालन नहीं करते हैं व केवल बातों में ही समय खो देते हैं । यह ठीक नहीं । पहली बात गुरुदेव (परम संत डॉ० श्री कृष्ण लाल जी महाराज) कह रहे थे कि सत्संगी को, जिज्ञासु को, जितना अधिकाधिक मिल सके गुरु का सत्संग करना चाहिए। कबीर साहब ने फरमाया है कि यदि संभव हो तो गुरु का सत्संग प्रतिक्षण करना चाहिए और यदि ऐसा सम्भव नहीं है तो दिन में एक बार अवश्य करें । यदि ऐसा भी संभव नहीं है तो महीने में एक बार । इसमें भी दिक्कत हो तो होती है तो फिर महीने में एक बार । इसमें भी दिक्कत हो तो फिर वर्ष में एक बार । गुरुदेव इतनी दूर रहते हैं आर्थिक कठिनाई हो तो उनके लिए कबीर साहब ने छूट दी है कि जीवन में एक बार गुरु के दर्शन अवश्य करें ।

गुरु का दर्शन दो तरह का होता है, एक शारीरिक दूसरा मानसिक । आपने भी गुरु महाराज के पत्र पढे होंगे । कई भाई उनकी सेवा में पत्र लिखते रहते थे कि वे किन्हीं परिस्थितियों वश व आर्थिक कठिनाइयों के कारण भंडारे में उनकी सेवा में नहीं आ सकते । गुरु महाराज भंडारे री को बड़ा महत्व देते थे । साधकों से फरमाते थी कि वो भंडारे में अवश्य है की भाई खासकर बहनें इस अवसर पर भंडारे में नहीं आ पाती थी तो वह फरमाते थे कि इनकी इन तीन दिनों में साधक दूर बैठा यही ख्याल करें कि मैं उन्हीं के सम्मुख बैठा हूँ । प्रत्येक व्यक्ति गुरु के समीप पहुँच नहीं पाता है । गुरु के समीप्य के सत्संग का लाभ नहीं उठा पाता है । तो उसके लिए अनिवार्य है कि मन से उसकी याद में रहे । गुरु कभी स्वयं यह नहीं कहता है कि कोई उसका ध्यान करें । वो कहता रहता है कि ईश्वर का ध्यान करो । तो मन से ईश्वर का या गुरु का ध्यान करना चाहिए । शरीर से कहीं अधिक मानसिक सत्संग का लाभ होता है । जब भी याद आए सवेरे सायं या अन्य समय में उसका मानसिक संग करना चाहिए । वो आपके लिए प्रार्थना करता है कि सब भाइयों का भला हो । आप भी

परमात्मा से प्रार्थना करिये कि हमारे गुरु को शक्ति दे कि वो हमारी योग्य सेवा कर सके । इस तरह एक दूसरे से के लिए प्रेम बढ़ता है । प्रेम ही साधन है । गुरु महाराज फरमाते थे कि जिस तरह लकड़ी के दो टुकड़े हो जाते हैं व उन्हें जोड़ने के लिए सरेस काम करती है इसी तरह जिज्ञासु व परमात्मा में, जिज्ञासु व गुरु में, योग करने में प्रेम हीं सरेस हो । दोनों में प्रेम हो । जिज्ञासु को गुरु के प्रति व गुरु को जिज्ञासु के प्रति । इतना प्रेम बढ़ता जाए कि दोनों की दूई मिट जाए । यही तो प्रार्थना हम गुरु प्रणाली (शजरा) में पढ़ते हैं ।

यह जरूरी नहीं है कि हम शारीरिक तौर पर नजदीक हो । मन से नजदीकी समीप्यता हासिल करनी चाहिए । और आपस में आत्मिक एकता हो जानी चाहिए । इस साधन से ही जिज्ञासु को लाभ पहुंचेगा व उसका भी उद्धार होगा, गुरु का ऋण भी उतर जाएगा । वो भी आपकी सेवा अधिकाधिक करता रहेगा ।

पढ़ा गया:- आंतरिक का अभ्यास, ध्यान, भजन व सिमरन करते रहना चाहिए ।

व्याख्या:- तीन प्रकार का साधन होता है । मौलाना रूम ने लिखा है कि हम तीन बंद लगाएं, भीतर के भी और बाहर के भी । वह विश्वास दिलाते हैं कि जो व्यक्ति तीन बंद लगा लें, भीतर के व बाहर के, तो उन्हें तुरंत दर्शन हो सकते हैं । उन्होंने तो यहां तक लिखा कि तीन बंद लगाकर किसी को ईश्वर के दर्शन नहीं होते हैं तो वह भले ही मुझको गाली दें । तो मुख से ईश्वर का नाम ले होंठ नहीं हिले जबान नहीं हिले । मन से, स्नेह से, प्रेम से, ईश्वर की स्मृति करें । नाम लेने का मतलब है, हम उसको याद करेंगे । वो कैसे है ? क्या उनका रूप है, क्या उनके गुण हैं ? वो करुणा सागर, दया सागर, शांति के सागर, आनंद के सागर हैं । उनका नाम ले रहे हैं, उनकी स्मृति कर रहे हैं । जबान के रसों को त्याग कर, ईश्वर के नाम, ईश्वर के प्रेम के रस को धारण कर रहे हैं । हजरत मोहम्मद साहब कहते हैं कि जिसने जबान को बस में कर लिया तो वह सब इन्द्रियों को बस में कर लेगा । एक जबान ही है जो खा-म-खा (व्यर्थ) बोलती रहती है, दूसरे की निंदा करती है । जबान ही है जो चटपटी चीजें खाती है प्रभु को भूल जाती है । जबान हीं है जो कटू-वचन बोलती है । वह मधुरता छोड़ देती है । तो इस जबान को परिवर्तित करने के लिए ईश्वर को प्रणाम किया जाता है, स्थूल जिह्वा व मन से । और जब धीरे धीरे मन मानेगा जबान स्मरण होगा, तब नामी की स्मृति सारे शरीर में बस जाती है, वह अप्रयास ही भीतर से 'नाम' चलने लगता है । तो जबान को मधुर बनाने के लिए सब रसों का त्याग करके प्रभु का नाम का रस लेने लगते हैं ।

'रसना स्वाद लगी, सहज सुख पाए' ।

मन की रसना व मुख्य में जो रसना है, दोनों में आनंद हो जाता है । एक क्षण भी खाली न जाए प्रभु की स्मृति बिना । इसके लिए कुछ मौन का साधन करना चाहिए । विरह का विवेक का साधन करना चाहिए । गुरु महाराज समझाया करते थे कि हम ईश्वर को कब भूलते हैं ? कि जब हम रसीले भोजन खाने लगते हैं तब उसकी स्मृति भूल जाते हैं क्योंकि उस खाने के रस में हम फंस जाते हैं । एक तो खाने के वक्त बोलना नहीं चाहिए । कम से कम बोले । यदि बोलना जरूरी हो तो बोले और भोजन का रस नहीं लेना चाहिए । यदि गलती से भी नमक अधिक पड़ गया हो तो गुरु महाराज का आदेश था कि उस वक्त नहीं बोलना चाहिए, शांति से भोजन के स्वीकार करते रहना चाहिए । जबान ईश्वर का रस ले भोजन का नहीं । यह ठीक है कि पेट भरना है, इसलिए साधारण भोजन के साथ सात्विक भोजन पर जोर दिया जाता है । खाना भी सादा हो, व हमारी रहनी भी साधारण हो । विचार ऊँचें हो । इस तरह से काम बनता है । तो जबान के रस को बंद करने के लिए ईश्वर के नाम का रस लेना चाहिए ।

इसी तरह से आंखों को लें । सारी गंदगी आंखों के द्वारा भीतर में जाती है, दृश्य देखते हैं, बुरे भले सब हमारी भीतर में जाते हैं । तो इनसे बचने के लिए यत्न करना है, जितने दृश्य भीतर जाते हैं वे संस्कार बनाते हैं व हमें जकड़ते हैं अर्थात विचारों के सागर में डुबो देते हैं । जिनके हमारे संस्कार अधिक बनेंगे उतनी हमारी भवसागर की यातना अधिक बढ़ेगी । हमें प्रयास करना है कि हमारे संस्कार कम हो । बल्कि कोई भी संस्कार भीतर में न रहे । तो आँखें (चक्षु) अपने ईष्ट देव के दर्शन करें ,प्रेम से । उसको अपने हृदय में बिठाएं और उसके भीतर में दर्शन करें । हम क्या करते हैं कि आँखे भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्य देखती है । जब मन में 'ॐ राम' कहते जाते हैं तो जो आँखें देखती हैं कि मन उसकी प्रतिक्रिया करने लग जाता है । साधना भूल जाते हैं । अभ्यास ऐसा बन जाना चाहिए कि ईश्वर के अतिरिक्त कुछ दिखे ही नहीं । शुरू में अभ्यास करते हैं कि ईश्वर को, गुरु को, भीतर में देखते हैं, मस्तिष्क में देखते हैं । किन्तु यह अभ्यास इतना गहरा हो जाए कि चक्षु भीतर व बाहर केवल उसी का दर्शन करें । प्रत्येक मनुष्य में, प्रत्येक वस्तु में, केवल ईश्वर ही दिखे ।

कानों द्वारा निन्दा सुनते हैं, ईश्वर की बातें सुनते हैं, अन्य बुराईयां सुनते हैं । इनसे बचने के लिए बाहर के कानों से जोड़ दो । अपने हृदय में, मस्तिष्क में, जो अनहद शब्द हो रहा है, ध्वनि हो रहे हैं, उसे सुने । उसे सुनने में दोनों कान लगाएँ, प्रेम से सुने, सरलता से

सुनें । बाहर की आवाजों से कान हटा लें । कईयों को ये शब्द सुनने में महीनों लग जाते है । कईयों को, वर्षों लग जाते है, तो घबराना नहीं चाहिए । कान भीतर में लगे रहें । एकांत में यदि आवाज़ सुनेंगे तो आपको यह शब्द जल्दी सुनाई देने लग जाएगा ।

तीनों बंद लगाये । जितनी मलिनता भीतर में जाती है वह मुख्यत: इन तीनों द्वारों से हो कर जाती है । वैसे नाक से भी जाती है सुगंधि के रूप में पर उससे कम संस्कार बनता हैं । शरीर के छूने से भी संस्कार बनता है पर वो कम । तो ये तीन मुख्य रास्ते है जिनके द्वारा बाहर की बातें, भीतर जाकर हृदय की पटल पर अंकित हो कर हमारे संस्कार बनाती है । इन्हीं से बचने के लिए महापुरुषों ने तीन बंद लगाने को कहा है कानों को बंद कर लें, अनहद शब्द सुनें । आँखों को बंद कर लें भगवन के दर्शन करें । मुख को बंद कर लें एवं प्रभु का नाम बड़े प्रेम से व आनन्द के साथ लें ।

यह सत्य है कि किसी के ये तीन बंद, बाहर के व भीतर के भी, यदि लग जाए तो गुरु महाराज फरमाते हैं कि साधना सफल होगा । आगे चलकर आपकी प्रगति होगी । साधना में तो अप्रयास ही भीतरके तीनों बंद लग जाएगी । तो आगे चल कर अंतिम चरण है कि व्यक्ति को अपने आप को पूर्णतया उस महान शक्ति को अर्पण करना है । इसी तरह से अभ्यास करते करते हैं हम स्वयं को प्रभु को अर्पण कर देते हैं । प्रभु हमें अपना लेते हैं । जिस तरह मूर्तिकार मूर्ति को गढत करता है उसी प्रकार वह महान कलाकार शिव भगवान हमारी गढत करते हैं । उन्हें महान कलाकार कहा गया है । यह भी एक साधन है जो अप्रयास ही आगे चलकर अपने आप हो जाता है । मौलाना रूम साहब का संकेत है, गुरु महाराज का संकेत है, कि तीन बाहर के व तीन भीतर के बंद लग जाते हैं, तो ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं और यह आत्मा परमात्मा का रूप हो जाती है ।

तो अभ्यास में तीन बंद अच्छी तरह से लगा लेना चाहिए । हम गंभीरता से नहीं करते इसके साथ साथ गुरू महाराज फरमाते हैं कि हम मनन नहीं करते । मनन करने से विवेक सधता है । भागवान कृष्ण ने भी गीता में अर्जुन को, जब उसने कहा कि मन टिकता नहीं है, उन्होंने बताया कि वैराग व अभ्यास का साधन करो । वैराग बिना विवेक के नहीं सकता है । विवेक का मतलब है, आत्मिकता को पकड़े व अनात्मिकता को छोड़े । गुरु में विवेक इस प्रकार लेते हैं कि जो बात हमारे हित की होती है उसे लेते हैं व जो हमारे अहित में होती है उसे छोड़ देते हैं । इस साधना को बढ़ाते-बढ़ाते धीरे-धीरे आत्मिकता को पकड़ते हैं, अनैतिकता को छोड़ते

हैं । अनात्मिकता क्या है ? यह संसार है इसमें कुछ भी सार नहीं है । यह बात समझ में आ जाती है । जब मृत्यु होगी तो कोई हमारे साथ नहीं जाएगा । ये जितनी सांसारिक वस्तुएं हैं क्षण भंगुर है, परिवर्तनशील हैं । इसमें कोई रस नहीं है । इसमें मुक्ति नहीं है । मुक्तिदाता केवल परमात्मा है, आत्मा है, गुरु है । तो विवेक के साथ बे-राग होना । सार को समझ अनात्मिकता का त्याग करते हैं । उससे बे-राग हो जाते हैं । अर्थात हमारी जो पकड़ है, मोह है, वह छूट जाती है । तो भगवान कहते हैं कि बैराग का, मनन का, अभ्यास करो । वैराग का मतलब है कि मन बार बार अपने स्थान से भागेगा । जहाँ उसके संस्कार हैं, वृत्तियाँ हैं वहां जाता है । वहां से वापिस लाकर उसको ईष्टदेव के चरणों में लगाना है । यह बार बार करना है । प्रयास करो, प्रयास करो, बार बार प्रयास करो, इसी का नाम अभ्यास है । गुरु महाराज फरमाते हैं कि मनन करो । हम मनन नहीं करते हैं । गुरु महाराज के जो प्रवचन है उन्हें पढ़े, व मनन करें । सोचें कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा ? ऐसा करने से हमारा क्या लाभ होगा ? आत्मिकता क्या चीज है ? वो हमारे शरीर में कहा है ? उनके दर्शन करने से हमे क्या लाभ होगा ? उनके दर्शन न करने से हमें क्या हानि होगी ? इस प्रकार का कोई विषय ले ले । उसकी छानबीन की गहराई में आए, यह मनन कहलाता है । मनन के बाद जो हमारे हित को होती है उसको अपने हृदय में बसाना चाहिए ।

पुस्तक से पुनः पढा गया:- अपने मन के ख्यालों पर हमेशा निगाह रखे व बुरे ख्यालों को हटाकर अच्छे ख्याल कायम करते रहें ।

व्याख्या:- प्रत्येक व्यक्ति को जब भी खाली समय मिले यह सोचना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूँ ? अपने विचारों की तरफ देखे कि किस प्रकार के विचार आ रहे हैं । यदि बुरे विचार आ रहे हैं तो आपकी कूड़ेदान यानि चित् में बुराई धंसी हुई है । बाहर से अधिक नहीं आते, भीतर में यह सब कुछ होता है । इन विचारों से बचने के दो रास्ते हैं, एक तो यह कि उन्हें दबाया जाए मगर वह दबते नही । बड़ी दृढ़ शक्ति चाहिए, बड़ी मानसिक व भौतिक शक्ति चाहिए । अध्यात्मिक शक्ति हो । हम लोग अपनी शक्ति से इन बुराइयों को दबा नहीं सकते । दूसरा तरीका जिसे महात्मा बुद्ध ने भी समझाया और जो मनोवैज्ञानिक व्यक्ति हैं वह समझाते हैं कि अपने विचारों को केवल देखो । इनकी प्रतिक्रिया कुछ न करो । प्रतिक्रिया करने से संघर्ष हो जाता है व हम कमजोर हो जाते हैं, और फलस्वरूप असफल हो जाते हैं । आते हैं विचार तो आने दो । विचार धीरे धीरे खत्म हो जाते है । दूसरे, बुरे विचार हो तो निकलने दो । अच्छे

विचारों हो तो हृदय पटल पर अंकित करें । ईश्वर का प्रेम अंकित करें । जनता की सेवा, दीनता, करुणा का भाव, अंकित करें । आगे चल कर बुरे विचारों का त्याग तो करना ही है अच्छे विचारों का भी त्याग भी करना है । केवल आत्मा परमात्मा व गुरू ही रहे । ये अभ्यास दिन में जब भी समय मिले दो चार दस मिनट के लिए अवश्य करना चाहिए । प्रतिक्षण अपने विचारों के प्रति सतर्क रहना चाहिए । हम क्या है, हम स्वयं जान सकते हैं अपने विचारों द्वारा । हमारी कमजोरी हमारी बुराई हमारी नेकी हमको खुद को मालूम हो सकते हैं । कोशिश करें कि अपने में जो भी बुराइयां हैं, त्रुटियां हैं, उनसे मुक्ति पायें । पर यदि अपने से कुछ नहीं होता है तो ईष्टदेव से निवेदन करें, ईश्वर से निवेदन करें । प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! इन बुराइयों से मुक्त करना । सच्चे हृदय से कहिये । मन का स्वभाव अधोमुखी हो गया है । स्वभाववश हम कर लेते हैं । संकल्प लेते हैं कि यह बुराई हम फिर नहीं करेंगे पर कर लेते हैं, तो यह स्वभाव जल्दी से नहीं बदलता । समय लगता है । तो बार बार प्रयास करना ही होगा । अंत में सफलता मिलेगी । तो आपसे निवेदन है कि गुरु महाराज के जो आदेश है उनका पालन करें । जितना भी हो सके इनका पालन करने का प्रयास करें । आज मुझे जाना है, समय थोड़ा है इसलिए आपसे आज्ञा चाहता हूँ । दो चार शब्द आपसे कहनी है, यहां के भाइयों ने बड़े प्रेम के साथ आपकी और मेरी सेवा की है । प्रेम प्रदान किया है । मैं आपके अति आभारी हूँ व कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । आप लोगों का आपस में जो प्रेम हैं स्नेह हैं वह गुरु महाराज से प्रार्थना करता हूं कि इसी प्रकार बना रहे हो इसमें दिन प्रतिदिन प्रगति हो । आपका सत्संग का सेंटर एक प्रकाश का सेंटर हो जाये । जो भी यहाँ आये प्रभावित हो जाए । अन्य सेंटर्स (केंद्रों) के भी लोग यहां आए हैं । मुझे विश्वास है कि वह प्रेरणा लेकर जाएंगे । यहां के भाइयों का प्रेम बड़ा ही शुद्ध है तारीफ़ के योग्य है । एक बात जरूर कहूंगा कि गुरु बनने की चेष्टा न करें । जो गुरु बनता है उसके रास्ते में बड़ी कठिनाइयां आती है । आप सोचते होंगे उसको बड़ा सम्मान मिलता है, बड़ा खाने पीने को मिलता है मगर यह उसके लिए अत्यंत हानिकारक है । गुरु महाराज फरमाया करते थे और उदाहरण दिया करते थे कि एक मंदिर के पास का पुजारी था, बड़ा सामान आता था उसके पास, व खाने की आदत पड़ गई । उसका दूसरा जन्म कुत्ते का हुआ था । यह सत्संग का धन खाना कोई अच्छा नहीं है । लोग इतना स्नेह देते हैं तो बोझ पड़ता है । उसका ऋण मुझे उतारना पड़ता है यदि कोई नहीं उतारता उसका ऋण, सेवा के रूप में, तो उसका दूसरा जन्म भी अच्छा नहीं होगा । गुरु महाराज ये बात अपने ऊपर कहा करते थे । यह बात आप सबको मालूम नहीं है तो सेवक

बनने की चेष्टा करें । अधिकाधिक सेवा करें । सेवा से जो आपको लाभ होगा वह गुरु बनकर नहीं होगा । यह एक बड़ा भारी बोझ है । जो शिक्षक वर्ग के लोग हैं, आचार्य हैं, या गुरु हैं, ऐसा न सोचें के ऐसा करने से, ऐसा बनने से, हमारा सम्मान बढ़ेगा । यह भूल है । आप बंधनों से जकड़े जाएंगे । बड़े प्रलोभन आते हैं, बड़ा सावधान रहना पड़ता है । कभी-कभी भूल भी हो जाती है ।

मेरा आपसे निवेदन है कि सेवा करें, सेवादार बने । Competition (होड़) सेवा में करें । जो गुरु को गुरु बनकर लाभ होता है, उससे कहीं अधिक आपको सेवक बनकर लाभ होगा । विश्वास रखें, मैं जो कुछ मैं कह रहा हूँ (विशेष व्यक्ति के लिए ऐसी बात नहीं कह रहा, सबके लिए कह रहा हूँ) सबके मन में ऐसी बातें उत्पन्न होती है । पूज्य गुरु महाराज अपने प्रति कहा करते थे । तो यह ऐसी बात नहीं है । पाप नहीं है । परन्तु बचना चाहिए इससे । यही प्रार्थना करें ईश्वर से कि हे प्रभु ! मुझे शक्ति दो कि साधारण सेवक ही बना रहूँ ।

साधन का कब लाभ होता है

(प्रवचन पूज्य भाई साहब डॉ० करतार सिंह जी)

गाजियाबाद, दि० २०-०४-१९८४

साधना में उस स्थान पर बैठे जहां वायुमंडल सहयोगी हो, प्रेरणा देने वाला हो, महापुरुषों की तस्वीरें लगी हुई है । उनको देखकर प्रेरणा मिलती रहे । मन में स्थिरता हो, शांति हो, संतोष हो । किसी के प्रति के घृणा ना हो । ईश्वर प्रेम रूप हैं, उसको पाने के लिए हमें भी प्रेममय बनना होगा । मन में घृणा है, यह विचार है कि कोई बड़ा है, कोई छोटा है, द्वेष की भावना है यदि ऐसी कल्पनायें आपके अंदर उठती हैं तो ये बातें ईश्वर से दूर रखती हैं । ईश्वर को तो इन बातों की जरूरत ही नहीं है । इन बातों से स्वयं दुखी होते हैं । अपने सुख के लिए हमेशा सावधान रहना चाहिए कि भीतर में किसी प्रकार की बुराई न आने पाये । जिसे क्रोध है, अहंकार है, तो वह सत्संगी क्या है । भीतर में सहनशीलता, संतोष, क्षमा, दीनता हो । यदि नहीं है तो प्रभु के चरण में बैठकर शबरी जी की तरह भीख मांगे और उनकी कृपा की प्रतीक्षा करें । पहले निज कृपा हो, प्रभु के कृपा बाद मे होंगी । बर्तन को निर्मल करना ही होगा । प्रभु कृपा के योग्य बनाना ही होगा । प्रकाश तो सब जगह है परंतु हमने अपने स्वभाव के कारण अपने हृदय की खिड़की को बंद कर दिया है । न भीतर का प्रकाश बाहर आता है न बाहर का प्रकाश भीतर जाता है । अपने आप को जलाते रहते हैं, दुखी होते हैं । यदि एक दफा ये स्वभाव बन जाए तो छूटता नहीं । तो प्रभु के चरणों में जाने से पहले सनातन विधि है कि हम गंगा स्नान करते हैं । यानि बाहरी शरीर का स्नान करके जब गंगा से निकलते हैं तो पंडित जी बैठे होते हैं । वो चंदन का टीका हमारे माथे पर लगा देते हैं । बाहर भी शीतलता और वो पंडित जी जो ऊंची करनी के होते हैं उनके हाथ के छूने से हमारे भीतर हृदय में भी शांति हो जाती है ।

आजकल की बात नहीं करता, पुराने लोग अभ्यास में ऊंचे होते थे, पवित्र होते थे । उन्होंने हाथ से छुआ नहीं कि चंदन की शीतलता तो बाहर आभासती ही थी परन्तु भीतर की शीतलता भी हो जाती थी । तो कोशिश करें कि साधना आरंभ करने से पहले हमारे भीतर में शांति हो और सच्ची जिज्ञासा हो । प्रभु के मिलने की, प्रभु को पुकारने का, बुलाने का, ढंग आता है, अन्यथा हमारी साधना एक मशीन की तरह होती है । और हम कहते हैं कि आज तो सत्संग में विचारों का तांता ही बंधा रहा । पुस्तक पढने बैठे तो यह पता ही नहीं कि क्या पढ़ा । भजन गाया पर पता ही नहीं उसका भाव क्या है । और कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम

ध्यान तो लगाएं । एकाग्रता से तो साधन करें । तो पहली बात जो है भीतर का स्नान होना चाहिए, सत्यता होनी चाहिए, विवेक होना चाहिए, शांति होनी चाहिए । तब आप प्रभु का नाम लीजिये और देखिये कि कितना रस आता है । जिनके हृदय में विरह हैं, वैराग्य है, उनका तो कहना ही क्या है ? पुराने अभ्यासी जानते होंगे कि आत्मा विद्या अर्थात आध्यात्मिकता यह मौन का विषय है जिसमें शब्दों का उपयोग बहुत कम होता है । जहां शरीर है, जहां मन है, जहां बुद्धि की चतुराई है, वहां हम आत्मदेश से दूर हैं । इस मौन को परिपक्व करने के लिए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि कम खाना चाहिए, कम बोलना चाहिए, कम सोना चाहिए । सभी महापुरुषों ने ऐसा कहा है । जब बोलने में प्रतिबंध लगाएंगे (भीतर का बोलना व बाहर का बोलना दोनों पर प्रतिबंध) तो मन भीतर से चुप होता चला जाएगा, निर्मल होता चला जाएगा । तभी इस स्थिति पर आ सकेगा कि किसी प्रकार की आशा संसार से नहीं है, तृप्ति है, पूर्ण संतोष है । उस संतोष में, उस तृप्ति में, जो मौन साधना होगी, वह आनंद की साधना होगी ।

स्वामी एकनाथ जी बैठे हैं, उनके पास कुछ भी शिष्य बैठे हैं । बाहर से एक शिष्य का पत्र आया हैं । शिष्यों को कहा है कि इसे खोलो । पत्र खोला है तो देखा है कि एक सफेद कागज है जिस पर कुछ नहीं लिखा हुआ है । वह स्वामी जी को भेंट किया गया तो वह मुस्कुराने लगे । सेवक चकित थे कि लिखा कुछ नहीं है व स्वामी जी मुस्कुरा रहे हैं, प्रसन्न हो रहे हैं । बात क्या है ? उन्होंने आदेश दिया कि पत्र को इसी तरह लिफाफे में बंद करके वापस भेज दिया जावे । जिसने पत्र भेजा था उसने जब उत्तर हेतु लिफाफा खोला तो देखा कि सफेद कागज ही है । स्वामी जी ने कुछ नहीं लिखा है तो वह वह भी बडा खुश हुआ । जब स्वामी एक नाथ जी से पूछ कि इसमें क्या रहस्य है तो उन्होंने समझाया है कि शिष्य पात्र बन गया है, योग्य बन गया है । उसके सब संस्कार खत्म हो गए हैं । उसके जो चित् पर इक्षाएं अंकित थी वो मिट गई है । केवल आत्मा ही आत्मा है । सचिदानंद रूप में वो व्यक्ति मस्त है ।

पिता कितना प्रसन्न होता है यदि उसकी संतान खूब पढ़ जाए । इसी तरह गुरु भी खुश होता है जब उसके शिष्य इस रास्ते में बढ़ जाएं । प्रगतिशील हो जाए । तो वे बड़े खुश थे । इसी तरह शिष्य भी प्रसन्न था कि गुरु का आशीर्वाद मिला, मेरी साधना उन्होंने स्वीकार की, प्रसन्नता पूर्वक मौन में ही मुझे प्रसादी भी दी । यह बड़ी ऊंची अवस्था है परन्तु इस आयाम में हमको सबको कोशिश करके पहुंचना है । यह रास्ता शब्दों का नहीं । यहाँ आकर तीनों गुण

खत्म हो जाते हैं । भक्ति में नौ प्रकार के जो भाव है वह भी खत्म हो जाते हैं । आत्मा पर पांच आवरण है वे भी खत्म हो जाते हैं । शुद्ध निर्मल आत्मा सचिदानंद स्वरूप रह जाती है । परन्तु हम लोग इंद्रियों के वश में है । चाहते यह है कि कोई व्यक्ति (गुरु) यहां आए और बोले । तो इसलिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है अन्यथा इस आत्मा विद्या में शब्दों के उपयोग की आवश्यकता नहीं है । आत्म देश में पहुंचने के लिए हमें क्या करना चाहिए ? इसका सरल रास्ता कौन सा है ? मैंने सत्संग में बैठने से पहले ही कहा था कि गंगा स्नान करना चाहिए अर्थात निर्मल होना चाहिए । शब्दों से नहीं निर्मल होंगे । हमारे भीतर में जो जन्मान्तर के संस्कार हैं वे एकदम कैसे निर्मल होंगे ? इसलिए कहते हैं कि मोक्ष कोई सरल बात नहीं है । महापुरुष कहते हैं कि यदि योग्य गुरु मिल जाए तो भी कई जन्म लग जाते हैं । योग्य गुरु भी मिल जाए तब भी कम से कम चार पांच जन्म लेने पड़ते है तब जाकर वास्तविक गुरु प्रसादी मिलती है व मोक्ष मिलती है । दुसरे शब्दों में, हम संस्कारों से मुक्त होते हैं । भीष्म रण क्षेत्र में जखमीं हो गये हैं, मृत्यु समीप है, तीरों की सेज पर लेटे हैं । उनकी बड़ी ऊँची साधना है । यमराज से कह दिया है अभी कृष्ण पक्ष है, शुक्ल पक्ष को आने दो । कृष्ण पक्ष का मतलब है कि अभी चाँद नहीं निकला है, अँधेरा है । अभी चित्त निर्मल नहीं हुआ है, संस्कार है । यदि मैं संस्कारों का यहाँ पुर्णतया त्याग नहीं करूँगा तो दूसरा जन्म लेना पड़ेगा । छः महीने वो पड़े रहे तीरों की सेज पर और जब तक चित्त निर्मल नहीं हुआ तब तक प्राण नहीं त्यागे पूर्ण चाँद नहीं आया अर्थात पूर्ण निर्मलता नहीं आई । भीतर में पूर्ण ज्ञान हो गया है, पूर्ण पवित्रता है, कोई संस्कार नहीं है, तब आपने शरीर छोड़ा है । तो हमारी दशा क्या है, सोचें ? क्या हम ऐसा कर सकते हैं ? हम इसी में संतुष्ट हो जाते हैं कि जब मरने का समय आता है तो कहते है बोलो 'राम' । मुंह में गंगा जल डालते हैं, आदि । इन बातों से कुछ नहीं होता । जन्म भर जो स्वभाव होता है वही उस समय अपनी प्रदर्शनी करता है व वैसा ही दूसरा जन्म मिलता है । ईश्वर कृपा से कोई महापुरुष हमारे पास उस समय हो तो भले ही हमारे चित् को ईश्वर की तरफ लगा दें जिससे हमारा बचाव हो । अन्यथा ये जीव एक बला की तरह भिन्न-भिन्न योनियों में घूमता ही रहेगा । मनुष्य को यह शरीर मिला है कि वो अपने संस्कारों से मुक्त हो, अपने स्वभाव को बदले तथा उनकी आत्म-दृष्टि हो, उसका चित्त निर्मल हो जाए, वो अधिकारी बन जाएं । जब तक ये मां के पेट में था तो प्रभु की आराधना करता था कि अबकी बार मैं गलती नहीं करूँगा । परंतु जैसे ही बाहर आता है प्रभु की माया व अपना मन ऐसे दबोच लेते हैं कि पहले वाले संस्कार तो होते ही हैं नए और बनते रहते हैं । इस बात को कोई

माने या न माने एक बात निश्चय है कि यदि हम बुरे कार्य करते हैं हमारी बुरी वृत्तियां हैं तो हमारा मन भीतर में आनंदित नहीं होता । कोई भी ऐसा मानव संसार में नहीं है जो यह न चाहता हो कि उसके भीतर में सुख हो, आनंद हो, शांति हो । परंतु प्रत्येक व्यक्ति यह भी चाहता है कि थाली में लगा लगाया भोजन मिल जाए, जिसे वह खाले । कहने का तात्पर्य यह है कि स्वयं कुछ न करना पड़े, सब कुछ गुरु ही करें और मोक्ष हो जाए । इस जन्म में मोक्ष की अनुभूति कर ले व बाद में भी कोई जन्म न हो । ऐसा नहीं होता इसके लिए मेहनत करनी होगी हमारे यहां प्रयाग में संगम में स्नान करने जाते हैं तो बहुत से व्यक्ति सोच लेते हैं कि संगम में स्नान हो गया तो हमारी मोक्ष हो गयी । ऐसी बातें सोचना सही नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति खुद ही देख सकता है कि क्या संगम स्नान करके या गंगा स्नान करके हमारे भीतर में परिवर्तन आया है ? यदि परिवर्तन नहीं आया है तो वैसे स्नान से क्या फायदा ।

संगम के तो कई अर्थ हैं । मैं केवल एक ही लेता हूँ । इसकी तीन मुख्य बातें हैं

(१) सत्संग (२) सेवा (३) सुमिरन । आप कहेंगे कि सत्संग तो हम रोज़ करते हैं । यह भी ठीक है कि सत्संग है । परन्तु सत्संग जो शास्त्र या महापुरुष करते हैं वह यह है कि किसी महापुरूष का संग करें । अर्थात जो ईश्वर से तद्रूप हो रहा है, जिसमें ईश्वर के सारे गुण समाये हुए हैं, (दूसरे शब्दों में जैसे भगवान ने स्वयं कहा है गीता में कि जब भी संसार में असंतुलन होता है तो वे स्वयं मनुष्य चोला धारण करके संसार में आते हैं व हमारा उद्धार करते हैं) ऐसा कोई व्यक्ति हो । चुंबक के पास लोहे को रखते हैं तो क्या होता है । लोहा खिंच जाता है । उसका बल खत्म हो जाता है । स्वामी विवेकानंद जी ने कोई विशेष साधना नहीं की । शुरू में स्वामी रामकृष्ण उनके पीछे पीछे-पीछे जाते थे और विवेकानंद जी कहते थे कि बाबा को क्या हो गया है ? मैं ब्रह्म समाज में जाता हूँ, मेरे पीछे पीछे क्यों आते हैं । परंतु परमहंस जी विवेकानंद जी को इस संसार में अपने साथ लाए थे ताकि इस संसार को लाभ पहुंचे । विवेकानंद को तभी होश आया है जब वे अमेरिका गए हैं सर्व धर्म सम्मेलन में प्रवचन करने के लिए । पहले पहल वे घबराए हैं कि इतने लोगों की भीड़ होगी । मैं क्या बोलूंगा ? मैं तो अभी एक नवयुवक ही हूँ । मेरा कोई अनुभव नहीं । क्या विषय लेकर क्या बोलूंगा ? इतने बड़े बड़े विद्वान आए हैं, इतने बड़े बड़े विद्वान आये हैं उनकी तुलना में मेरा क्या स्थान है ? रात को परमहंस स्वामी रामकृष्ण प्रकट हुए । सवेरे जो प्रवचन देना था । वो सारा का सारा स्वप्न में कह दिया है । उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी । किताब पढ़ते थे तो कुछ ही घंटों

में किताब खत्म कर लेते थे । उसके बाद उससे पूछो कि अमुक बात किस पृष्ठ पर है तो तुरंत बतला देते थे कि अमुक पृष्ठ पर अमुक पंक्ति में है । उनकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र थी । स्वामी जी ने रात्री को जो लेक्चर दिया, पढ़ाया, वो उनकी बुद्धि में अंकित हो गया । सुबह उन्होंने जाकर वैसा ही प्रवचन दिया । संसार के विद्वान सब चकित हुए कि यह कैसा युवक है, क्या बोल रहा है । इसे तो परमात्मा ने ही भेजा है । यह युवक नहीं है, यह मानव नहीं है, यह तो परमात्मा का कोई गुण है जो बोल रहा है ।

तो यदि ऐसा कोई महापुरुष मिल जाय व हमारे भाग्य अच्छे हों तो कुछ करने की जरूरत ही नहीं है । उसके पास बैठना ही काफी है । जैसे चुंबक के पास पड़ी लोहे की धातु को धकेलने की जरूरत ही नहीं होती है वह खुद ही खींच लेता है । इसी तरह ऐसे महापुरुष की हमें प्राप्ति हो जाए तो हमें कुछ करने की जरूरत नहीं होती । पांच छह हफ्ते की बात है मैं दिल्ली में एक महापुरुष की सेवा में गया । कोई एक घंटे तक बैठा रहा कोई बातचीत नहीं हुई । वे साधारणतया अन्य व्यक्तियों से बातें करते रहे, कभी चुप हो जाते । जाते समय मैंने निवेदन किया आप कुछ हुक्म करें । वे चुप हो गए, दो मिनट पश्चात बोले कि क्या सूरज का प्रकाश लेने के लिए कुछ कहने की जरूरत होती है । संत के पास बैठ कर उसके दिल की पुस्तक पढ़ने के लिए कुछ करना होता है ? इस आत्मिक विद्या का आदान प्रदान बोलने से नहीं होता है । वास्तव में जितने समय उनके पास बैठा एक आनंद का समय था । गुरु नानक देव कहते हैं कि कोई साध पुरुष मिल जाए तो कुछ करने की जरूरत नहीं । परंतु सब को तो ऐसे साधु सिद्ध पुरुष नहीं मिलते । मगर खोजते रहना चाहिए । यह भी एक साधना है । शिवरी बैठी है प्रतीक्षा में, प्रार्थना कह रही है प्रभु से । इंतजार कर रही है, महीनों हो गए, कितना समय हो गया, बैठी है । यदि भीतर में ऐसी भूख हो तो प्रभु जरुर प्रकट होते हैं । ध्रुवतारे को तो सभी जानते हैं । ध्रुव ने प्रतीक्षा की, भगवान आए । तपस्या तो वे कर ही चुके थे परन्तु उनकी तस्वीर को ऐसा गढ़ दिया, कलाकार ने ऐसा बनाया कि जब तक यह दुनिया है । उसका नाम आसमान में रहेगा ही । ये सत्संग है । ऐसा सत्संग जब तक नहीं मिलता है तब तक ईश्वर के चरणों में बैठकर प्रार्थना करनी चाहिए । उनका गुणगान करना चाहिए व उनकी कृपा की प्रतीक्षा करनी चाहिए । परमात्मा सर्व व्यापक है उसकी कृपा भगवती वती प्रसादी प्रत्येक वस्तु पर हर समय एक स्थान पर एक जैसी पड़ रही है । किसी समय, किसी स्थान पर भी इस कृपा की अनुभूति प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है । केवल थोड़ा सा (Relaxed Mood) में बैठे यानी शरीर में तनाव नहीं हो । मन में तनाव नहीं हो प्रार्थना का रूप हो भीतर में प्रार्थना कर रहे हो

व अपने आपको ढीला छोड़ दें, हृदय की खिड़की खोल दे । दो चार मिनट बैठे तो आपको कुछ न कुछ अनुभूति होगी । ऐसा लगेगा कि कुछ आनंद आ रहा है । भीतर में व सारे शरीर में कुछ छू रहा है । यही साधना करते रहें । तो धीरे धीरे हम ईश्वर के साथ तद्रूप हो सकते हैं । संत भी यही करता है परंतु संत की कृपा व व ईश्वर की कृपा में अंतर है । ईश्वर की कृपा सामान्य है सब पर, परन्तु गुरु की कृपा या साधु की कृपा या संत की कृपा विशेष रूप लिए है । वैसे ही जैसे सूरज की किरणें सब पर एक जैसी पड़ रही है परंतु सूरज की किरणों के नीचे काला कपड़ा रख दिया जावे व बिच में आतिशी शीशा (Magnifying Glass) रख दिया जावे तो किरणों की शक्ति अधिक हो जाती है व वह काला कपड़ा जल जाता है । (साधारण तथा काला कपड़ा सूरज के प्रकाश में पड़ा रहे तो जलता नहीं है) । यही अवस्था संतों की है । ईश्वर की कृपा संत के हृदय से निकल कर अधिक तीव्र हो जाती है । अधिक प्रभाव करती हैं । अन्यथा दोनों में कोई अंतर नहीं है । ऐसा भी नहीं कर सके तो जैसा भी कोई स्थान मिले जहाँ ईश्वर के गुणगान हो रहे है, ईश्वर की कृपा हो रही है, कोई ज्ञान की साधना कर रहा है, कोई भक्ति भी कर रहा है, जैसा भी कोई मिले, चाहे अच्छे चार पांच व्यक्ति बैठे हैं उनके पास बैठिए । जैसी भी संगति होगी वैसे विचार बनेंगे । बुरी संगति होगी बुरे विचार बनेंगे । बुरी संगति से बचे व अच्छी संगति अपनाएं ।

उसके बाद आती है 'सेवा' भगवान ने गीता में बताया है कि सेवा का क्या रूप होना चाहिए । निष्काम भाव से सेवा करें, दूसरे के हित, दूसरे की प्रसन्नता के लिए । अपना कोई स्वार्थ कोई आशा न हों । कर्म व कर्म फल के साथ कोई आशा न हो । यह तो सेवा का एक रुप है । दूसरा सेवा का रूप है जिसका दामन आपने पकड़ा है, जिसकी शरण अपने ली है, उस महापुरूष के आदेश का पालन करना । उससे प्रेम करना । उसे प्रेम करने का अर्थ है कि उसके आदेशों का पालन करना, यह सर्वोत्तम सेवा है । तो महापुरुष क्या आदेश देते हैं, वह कोई पैसा नहीं मांगते, कोई हाथ पाव की सेवा नहीं मांगते, वो क्या चाहते हैं--- सद्गुणों को अपनाओ अवगुणों का त्याग करो, बस निरंतर प्रभु की याद में रहो । कोई महापुरुष आपको इसके अतिरिक्त नहीं कहेगा । कोई बहुत ही स्थूल स्वभाव का होगा वह हाथ पांव की सेवा स्वीकार करेगा ताकि व्यक्ति का अहंकार नष्ट हो जाये क्योंकि जब तक दीनता नहीं आती गुरु की शिक्षा शिष्य में प्रवेश नहीं करती है । दीनता के भी कई रूप हैं । व्यवहार की दीनता व असली दीनता है राजी-ब-रज़ा हो जाए । "जेहिं विधि राखे राम तेहि विधि रहिये ।" अपनी गति

को ईश्वर की गति में मिलाना, यह दीनता है । तो ये गुण जब आते हैं तो महापुरुष प्रसन्न हो जाते हैं व उनकी प्रसन्नता ही हमारा ध्येय है । हमारा उद्धार हो जाता है ।

साधारण व्यक्ति को महापुरुष स्मरण में डाल देते हैं । स्मरण के तीन रूप हैं, ध्यान भजन व सुमिरण । सुमिरण के भी कई रूप है । ऊँची - ऊंची आवाज़ में नाम लेना, फिर होठों से लेना, धीरे बोलना, कम बोलना फिर कंठ में हीं आवाज़ रहे फिर सीने में ही आवाज रहे । जब तक अनहद शब्द शुरू हो जाता है तब तक यह सब स्मरण में हो जाते हैं, परंतु स्मरण करना है प्रेम के साथ । जिसका स्मरण कर रहे हैं, उसका स्वरूप, उसके गुण, हमारे सन्मुख हो । वो हमारा सच्चा हितैषी है । वो हमारा सच्चा पिता है, पति है । उसकी तस्वीर उसके गुण हमारे में समा जाए । हम अपने मित्रों की तस्वीरें अपने कमरों में लगाते हैं । उनकी तस्वीरों से उनको याद करते हैं । इसी तरह ही अपने प्रीतम का स्मरण करना है । केवल राम राम करने से नहीं होगा, राम की तस्वीर चित्त पर अंकित हो जाए । जिस वक्त राम का नाम ले सारा शरीर रोमांचित हो उठे । जिससे आप प्रेम करते हैं उसका भाव आ जाए । तो क्या होता है ? कम से कम इतना ही भाव हमारे हृदय में उत्पन्न हो, स्मरण का मतलब यही है । उसके स्वरूप का ख्याल करना, उसके गुणों का ध्यान करना । वो जो नाम है, उसमें अपनी सूरत को लगा देना, उसके अर्थ की गंगा में स्नान करना । ओ३म शब्द कह रहे हैं । ओ३म ओ३म है इस तरह कहने से क्या होगा । "ॐ" के जो अर्थ हैं उसमें अपनी सूरत को लगा दें ताकि वो अर्थ आपके रोम रोम में समा जाए । "तू तू करता तू भया मुझमें रही न मैं" । इस तरह उसका स्मरण करते रहे । उसका दूसरा रूप हैं ध्वनि । जो भीतर में अनहद शब्द हो रहे हैं, उनको सुनना यह भी प्रेम हीं है । इसको सूरत शब्द का अभ्यास कहते हैं । इसका तीसरा रूप है ध्यान । ध्यान से पहले धारणा की जाती है । जिसे हम सर्वाधिक प्रेम करते हैं, उसका ध्यान करें, ऐसी धारणा करते हैं पहले । फिर वो धारणा परिपक्व होती होती ध्यान का रूप बन जाती है । फिर वो ध्यान परिपक्व होता होता समाधि बन जाता है । समाधि में ध्यान करने वाला (ध्याता) जिसका ध्यान किया जाता है (ध्येय) सारी जो क्रिया है ध्यान की (धारण) तीनों एक हो जाते हैं । यह समाधि का रूप है । इस समाधि में क्या होता है । ईश्वर के गुण आ जाते हैं । निर्मलता आ जाती है । शांति शीतलता आ जाती है । कोई संस्कार रहता ही नहीं । तो संत का सत्संग उसकी सेवा और उसके बताये हुए नाम का स्मरण करना अर्थात जैसा भी उसने उपदेश दिया है उसका पालन करना । इन्हीं तीनों बातों से कल्याण होगा ।

कई संत ज्ञान का उपदेश देते हैं । जैसी संत की वृत्ति होती है वैसा करते हैं । कोई भक्ति की साधना बताता है, कोई योग का बताता है, कोई तांत्रिक विद्या बतलाता है । सभी रास्ते भगवान के चरणों में जाने के लिए है । किसी की प्रतिक्रिया नहीं करनी चाहिए कि यही रास्ता सही है, दूसरा गलत है । सभी सही है । भगवान कृष्ण हमें विश्वास दिलाते हैं कि जिस रास्ते से भी हम चलेंगे उनके चरणों में पहुंचेंगे । हम वृथा आपस में लड़ते हैं । सभी रास्ते ठीक है । कोई गलत नहीं है । प्रेम होना चाहिए ईश्वर के चरणों के साथ । अपना उद्धार करना है, संस्कारों से विमुक्त होना है, और ईश्वर से तद्रूप होना है । जो कोई भी रास्ता आपको अच्छा लगे उसको अपना ले । आपके भीतर में शांति होगी । यह गंगा जल कितना शीतलहै, यह अटूट शीतल जल है, इस प्रकार के भीतर में शीतलता होनी चाहिए । आनंद होना चाहिए, सुख होना चाहिए, तब तो साधना का लाभ है अन्यथा एक मशीन की तरह चल रहा है । एक महापुरुष ने कहा है कि कितने दुःख की बात है कि हमारी जेब में से दो चार रुपये गिर जाए तो हमें गहरा दुःख होता है परंतु हमारे श्वांस जो गिनती के हैं हम प्रतिक्षण खो रहे हैं इन श्वांसो को । परन्तु किसी व्यक्ति को ख्याल नहीं है कि यह हमारा नुकसान हो रहा है । यह समय फिर नहीं आएगा । यह श्वास फिर नहीं आएंगे । मृत्यु नजदीक आ रही है इसका किसी को ख्याल नहीं होता । तो सचेत रहना चाहिए अपने लक्ष्य के प्रति । हमारा लक्ष्य है कि हमें शरीर में रहते हुए स्वतंत्र होना है । मोक्ष प्राप्त करनी है, सच्चे आनन्द की प्राप्ति करनी है । रास्ता आपके लिए खुला है, जो आपको अच्छा लगे उसको अपनाएं । परन्तु लक्ष्य सबका एक ही है । परमात्मा सबका एक ही है । उसके घर में कोई दीवारें नहीं । वहाँ सब धर्म आदि के झगड़े छोड़कर निर्मल हो जाना है । बाहर के जितने रूप है यह सब बाधाएं हैं । इन्हें पार करना होगा । इन सब नामों का, गुणों का, शब्दों का (ये सब बाधाएं हैं रास्ते की) इन सब का त्याग करना होगा । प्रेम में हम बनावटी आभूषणों को उतार देते फेंकते हैं इसलिए आपने देखा होगा कि जितने महापुरुष हुए हैं उनकी सेवा में जाओ तो वो कहते हैं कि जितना बोझ सर पर उठाया हुआ है उन सब को जल में फेंक दो । स्वामी दयानंद जी गए हैं गुरु विरजानंद जी के पास बड़े शास्त्रज्ञ थे, बड़े शास्त्र उठाए हुए थे । तो गुरुदेव ने कहा है कि दयानंद इन शास्त्रों को यमुना जी में डाल आओ । ये जिज्ञासु थे, पढ़े लिखे जरूर थे परन्तु आत्मिक ज्ञान की अभी जरूरत थी । तो इन्होंने संकोच नहीं किया । पुस्तकें आदि सब डाल दी । ऐसे महापुरुष को भी डालनी पड़ती है । आप और हम तो क्या है, हम सब फंसे हुए हैं विचारों में, सिद्धांतों में, इसलिए लड़ते झगड़ते रहते हैं । बाहर का तो झगड़ना है ही, भीतर में भी झगड़ा होता रहता है । यह बड़ा

खतरनाक है । कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो भीतर में शांत हो । क्योंकि वह इन्हीं में फंसा हुआ है । तो सच्ची शांति के लिए महापुरुषों के बताए हुए रास्ते पर चलना होगा । प्रयास करें । गीता रामायण संतों की वाणी व एनी ग्रन्थ हैं, शास्त्र हैं उन्हें पढ़ें । व्यवहार में समता लाएं । नौकरी करते हैं, कोई व्यवसाय या अन्य कोई काम करते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति जो आपके संपर्क में आए उसे भगवान का रूप समझे । महात्मा गांधी कहते हैं कि जो ग्राहक आपकी दुकान पर आता है तो ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिए कि ईश्वर इस रूप में आया है । आप सब उसकी सेवा करें । उतना ही पैसा उससे लें जितना आवश्यक है । उसके कपड़े ने उतारे । उससे प्रेम से बात करें और ध्यान रहे कि यह ईश्वर का ही रूप है । इसी तरह आप दफ्तर में रहते हैं फाइलों का काम करते हैं तो ये ख्याल करके करें कि ईश्वर के चरणों में बैठे हैं, यह काम ईश्वर ने दिया है । अपने काम और व्यवहार से अफसर को खुश करना है । यहीं तक नहीं अफसरों के अफसर (भगवान) को खुश करने के लिए ठीक से काम करें । यह नहीं कि उठे व बाहर जाकर ताश खेलनी शुरू कर दी, चाय पीनी शुरू कर दी, अखबार पढने लग गए । शाम का वक्त हुआ तो अखबार पढने बैठ गए । तो यह तो नहीं चलेगा । यह तर्क करना कि समय नहीं मिलता गलत है । जो काम आप करते हैं उसको हीं ईश्वर का नाम समझ लीजिये, उसको ही साधना समझ लीजिये । कहीं अन्य जाने की जरूरत नहीं । कहीं भागने की जरूरत नहीं । उसी काम को पूजा करके रूप दे दीजिये ।

भगवान विष्णु नारद जी से कहते हैं कि मेरे अमुक भक्त के पास जाओ व उसकी कुशलता पूछ कर आओ । वे आते हैं वहां व नारायण नारायण करते हुए उसके पास पहुंचते हैं । वह सेवा करता है । वो देखते हैं कि वह तो अपने काम में बड़ा मस्त है । सुबह उठकर एक बार कह देता है 'नारायण' व अपने काम मे लग जाता है, रात को सोते वक्त भी एक बार कहता है 'नारायण' । इनको बड़ा दुःख हुआ है । वे सोचने लगे कि इसके पास भगवान ने भेजा है । मैं तो समझता था कि यह कोई बड़ा भक्त होगा । परन्तु यह तो सारे दिन अपने सांसारिक काम में लगा रहता है । भगवान का खूब नाम लेता होगा । वापस चले गए भगवान के पास और कहा कि आपने मुझे कहाँ भेज दिया ? भगवान बोले क्या बात हो गई । नारद बोले कि आपका भक्त कैसा है ? सुबह उठ कर 'नारायण' कह लेता है और दिन भर संसार के काम में लगा रहता है । इतना व्यस्त रहता है कि उसको आपकी याद ही ही नहीं आती । भगवान बोले 'ठीक है' । दो चार दिन बाद नारद जी को एक कटोरा दिया उसमें तेल भर दिया व कहा कि आप यह ले जाइए और विश्व की परिक्रमा करके मेरे पास आइये । देखिये तेल बिखरे नही ।

कुछ ही कदम चले तो नारद जी के पग आगे नहीं बढे । उनका ध्यान है तेल की तरफ कहीं तेल न गिर जाए । कुछ ही कदम चले थे कि वापिस आकर भगवान से कहने लगे 'यह तो मेरे से नहीं होगा' । भगवान कहने लगे कि वो व्यक्ति तुमसे तो अच्छा हुआ । कितनी लगन से काम करता है । उस लगन में उसको मेरी याद है । आप भी मेरी याद में जाते तो यह काम कर सकते थे । तो कहने का मतलब यह है कि यह तर्क करना कि हमारे पास टाइम नहीं है यह सही नहीं है । जरूरी नहीं है कि औपचारिकता के नाते अगरबत्ती जलाकर आसन बिछाकर बैठे, वह ईश्वर की आराधना करें । यदि हो सकता है तो ठीक है वरना अपने काम को ही पूजा समझ कर ही करिये । उसी में मस्त हो जाइये । ये जो व्यक्ति आपके संपर्क में आता है उसको ईश्वर का रूप समझे । कुछ दिन ऐसा करें तो आप उसका शोषण नहीं कर पाएंगे । कुछ दिन के बाद आप कहेंगे कि मेरी जेब में जो भी है वो भी इसको लूटा दूँ । आपका मन ही नहीं करेगा कि मैं पैसे को घर में जमा करके रखूं । आप मन ही मन सोचेंगे कि चार पैसे आज ज्यादा आए तो किस तरह उनको बांट कर घर पहुंचे । आपकी पूजा हो गई । ईश्वर पूजा आपने कर ली । बड़ी दीनता के साथ करी है कोई मोह नहीं है । भीतर में सुख है, आनंद है, कोई परेशानी नहीं है । रात को आपको नींद बडी अच्छी आएगी, इससे अच्छी और पूजा क्या होगी ? गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) ने इसको सर्वोत्तम साधना कहा है ।

तो निवेदन है ऐसे प्रेमियों से जो यह कहते हैं कि हमें समय नहीं मिलता उनको तनिक भी दुःख नहीं मनाना चाहिए । परन्तु कांटा बदलना चाहिए । जैसे गाड़ी का कांटा होता है जिसे एक लाइन से दूसरी लाइन में बदलते हैं, उसी तरह सिर्फ अपने मन को बदलना है। साथ में अपना काम करना है । यह सब व्यक्तियों के लिए है, एक के लिए नहीं है । गुरु महाराज का प्रवचन है कि प्रातः से लेकर रात्रि तक हमारी दिनचर्या कैसी हो, वह बार बार पढना चाहिए । **साधना में केवल आँखें बंद करके बैठने में विशेष लाभ नहीं होगा । इसके साथ साथ ईश्वर के साथ प्रेम भी करना होगा । धर्मशास्त्र के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना होगा । अपने गुरु और ईश्वर के आदेश का पालन करना होगा और निरंतर प्रयास करना होगा । वैराग व अभ्यास से संसार को धीरे धीरे छोडते चले जाना है । मन का मोह, संसार से लगाव, उनको धीरे धीरे छोडते चले जाना है । और ईश्वर के चरणों को पकड़ने का बार बार अभ्यास करना है** । गुरु नानक देव ने तो यहां तक कहा है कि कोई कठिन तपस्या करने की जरूरत नहीं है । हंसते खेलते ही मुक्ति हो जाती है । अर्थात साधारण जीवन व्यतीत करते हुए भी मनुष्य-जीवन मुक्त हो सकता है । मुक्त होने का मतलब है अपने संस्कारों से मुक्त । उसमें वहीं गुण

आ सकते हैं जो ईश्वर में हैं, गुरु महाराज की सेवा में आप में से जो लोग रहे हैं वे जानते हैं कि वो क्या करते थे। धार्मिक चल चित्र दिखाने ले जा रहे हैं, कभी होली का मेला लग रहा है, सिकंदराबाद में, वहां मेले में ले जा रहे हैं। यात्रा में साथ हैं तो वहां ले जाकर भिन्न भिन्न स्थानों पर दर्शन करा रहे हैं। चौबीसों घंटे आँखें बंद करके नहीं बिठाया, उन्होंने जीवन में मनोरंजन दिया, उन्होंने मित्रता का व्यवहार दिया है। बच्चों को खिलाया है। यहां लड़कियां भी बैठी हैं उनको पढ़ाया है। ये साधना थी उनकी। हमें अपने पांव पर खड़ा कराया है। कभी यह नहीं कहा कि सुबह से लेकर शाम तक साधना में लगे रहें, नहीं, अपने प्रेम से हीं हम सबको बनाया। जो कुछ इस समय हम हैं यह उनके प्रेम का सिदका है। एक नहीं, हम में से कई लोग ऐसे भी यहां बैठे हैं। तो जीवन को भगवान के बताये रास्ते पर चलाएं। वो रास्ता है कर्तव्य परायणता व ईश्वर प्रेम। ईश्वर प्रेम का मतलब गुरु परायण भी है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य को पहचानना चाहिए। हम अज्ञानी हैं, अंधकार में है। वैसे तो हम कहते हैं कि बहुत पढ़े लिखे हैं परन्तु व्यवहार में देखेंगे कि हम सोए हुए हैं। हम अपने प्रति सतर्क नहीं, जागरूक नहीं। मन सदैव विचलित रहता है, तब भी नशा पिए हुए है, उस अशांति में ही जिए जा रहे हैं। कोई कोशिश हीं नहीं करते हैं कि उस अशांति को दूर करें। बुद्धि तर्क करती रहती है, परन्तु इसमें सत्यता के गुण नहीं आ रहे। यह विवेकशील नहीं है। हम जानते हैं कि हमारी बुद्धि विवेकशील नहीं है, वैरागशील नहीं है, परन्तु सोये हुए चल रहे हैं।

आपने कई लोग देखे होंगे जो सोते में चलते फिरते हैं, वही हालत हमारी है। यह अज्ञान की हालत कही जाती है। दुखी हैं, पीडित हैं, परंतु दुःख को दूर करने का किसी को ख्याल नहीं होता। यदि ख्याल उत्पन्न हो जाए तो व्यक्ति कोई न कोई उपाय तो ढूंढेगा। तब उसको आराम मिलेगा, वही सुखी होगा। उसकी पूजा में रस मिलेगा, शांति मिलेगी। हम यही शिकायत करते रहते हैं कि साहब हमारा मन बड़ा दुखी है। मगर दुःख का कारण तो ढूंढे। महात्मा बुद्ध यही कहते हैं कि पहले तो ईश्वर कृपा से हमें यह बोध हो जाय कि हम दुखी हैं। कुछ लोगों को यह हो जाता है परन्तु वे दुःखका कारण ढूंढने को तैयार नहीं। वो चाहते हैं कि कोई औषधि हमें दे दे जिससे हमारा दुःख दूर हो जाए। दुख का कारण ढूंढना चाहिए और दुःख दूर हो जाए वह अवस्था कैसी होती है इसकी अनुभूति करने की कोशिश करनी चाहिए। और यदि कोई संत, गुरु, मार्गदर्शक कोई उपाय बता दें (जैसे डॉक्टर दवाई बताता है तो परहेज भी बताता है और यदि हम दवाई नहीं खाएंगे तो रोग से निवृत्त कैसे होंगे) उसी प्रकार वे जो रास्ता बताएं उस पर चले। उनका जीवन एक नमूना है, कि उन्होंने स्वतंत्रता कैसे प्राप्त की।

परंतु तब भी हम आगे नहीं बढते । तो पहले तो यह जागृति होनी चाहिए कि हम दुखी हैं, फिर दुख का कारण जानना चाहिए । फिर औषधि और उसके खाने के बाद हमारी क्या अवस्था होगी उसका ज्ञान । यह सब साधना में आ जाते हैं ईश्वर-नाम में आते हैं । रविदास जी कह रहे हैं कि 'ईश्वर का भजन करना' यह सब उसी में आ जाता है । ये सब बातें धीरे धीरे समझ में आ जाती है । इसके लिए हम सब के लिए आवश्यक की सत्संग का लाभ उठाएं । जो व्यक्ति पुराने हैं, पक्के हो गए हैं, अपने गुरु में निष्ठा है, उन्हें जहां भी अच्छा सत्संग मिले उसका लाभ उठाना चाहिए । **यदि सत्संग शारीरिक नहीं मिलता है तो मानसिक सत्संग का लाभ उठाना चाहिए । मानसिक सत्संग का मतलब यह है कि हमेशा याद रखना चाहिए कि हम गुरु के चरणों में बैठे हैं, उनकी कृपा हम पर बरस रही है, हम उनके चरणों का ध्यान कर रहे हैं । इसको हम स्मरण कहते हैं । यही याद है । ऐसा करने से भगवान के उपस्थिति का अनुभव होने लगेगा ।** इनके साथ-साथ अपने सत्संगी भाइयों को उचित है कि गुरु महाराज के प्रवचन पूज्य लाला जी महाराज (दादा गुरुदेव) के जो इरशाद (वाणी) है उनका अध्ययन करना चाहिए । बहुत नहीं, थोड़ा थोड़ा करें । यह नहीं कि एक पुस्तक एक ही दिन में खत्म कर दो । आधा पृष्ठ पढ़ो परन्तु मन लगाकर, समझ कर, और बाद में उस पर मनन किया जाए, यह ही सत्संग है । तो शारीरिक सत्संग का भी महत्व है और मानसिक सत्संग का भी महत्व है ।

कबीर साहब ने लिखा है संभव हो तो गुरु की सेवा में रोज जाना चाहिए । हम रोज जाते हैं मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारों में, इसीलिए जाते हैं परन्तु यदि हमारा मुर्शिद (गुरु) हमारे पास है, उसकी सेवा में रोज जाना चाहिए । कहते हैं कि रोज नहीं तो सप्ताह में एक बार, सप्ताह में नहीं जा सकते तो महीने में एक बार, ऐसा करते करते उन्होंने कहा कि एक बरस नहीं तो जीवन में ही एक बार जाना चाहिए । सत्संग में कई बार निवेदन किया है पर मेरे में ही कमी है जो मेरी बात कोई मानता नहीं है । सत्संग के दिनों में विशेषकर बोलना नहीं चाहिए । केवल गुरु या ईश्वर का ध्यान हो व मन में मधुर स्मृति हो । जरूरत पड़े तो दो चार शब्दों का प्रयोग कर लिया अन्यथा मौन रहे । कई जगह पर ऐसा भी है जहाँ सत्संग किया जाता है उसकी परिधि (बाउंड्री वाल) से साधक बाहर नहीं जाता क्योंकि यह वातावरण अनुकूल बन जाता है । आप इस वातावरण से बाहर जाते हैं तो जो आपको प्राप्त होता है वह सब खत्म हो जाता है । सब बहन भाइयों को कोशिश करनी चाहिए कि कम से कम बोला जाए और हो सके तो सत्संग स्थल से बाहर नहीं जाना चाहिए । मन में चंचलता होती है । इसका स्वभाव ही

ऐसा है । ये वैरायटी (विविधरता) चाहता है । एक खिलौने से बच्चा खुश होता है, फिर रोने लगता है तो मां उसे दूसरा खिलौना दे देती है । बड़ों का भी यही हाल है इनको भिन्न भिन्न प्रकार के खिलौने चाहिए । यहां तो मुश्किल से दस मिनट बैठे या आधा घंटे बैठे मन लगा या नहीं लगा, परंतु सोचते हैं कि बाजार में चलो आज मिठाई खाएंगे, आज यह करेंगे वह करेंगे आदि । सब किया कराया खत्म । यह सबके घरों में होता है । मेरे भी होता है । इधर पूजा की, उधर टीवी देखा । इधर खाने की बातें की उधर किसी के विरोध की । किसी को बुरा भला कहा । तो जितना लाभ होता है वह सब खत्म, इसलिए रोक लगाने की आवश्यकता है, यही गुरु का आदेश पालना है । गुरु कहता है कि ईश्वर के ध्यान में रहो परन्तु आप इधर उधर घूमते हैं तो ध्यान तो खत्म हो गया तो आपने क्या पालन किया आदेश का ।

साधना के महत्व को समझे जीवन के महत्व को समझें । जीवन का महत्व यह है कि परमात्मा ने बड़ी कृपा करके यह मनुष्य चोला दिया है । इसी में रहते, अपना उद्धार करना है अर्थात स्वतंत्र होना है । अपने संस्कारों से मुक्त होना है, अपनी वृत्तियों से, आदतों से, मुक्त होना है । तथा भीतर में आनंद ही आनंद हो । सुख हीं सुख हो , शांति हीं शांति हो और वो सुख और आनंद का रस स्वयं भी अनुभव करना है एवं उसको बांटना है । ये हमारा कर्तव्य है । ये हमारे गुरु का आदेश है । महापुरुषों ने यही आदेश हमेशा से दिया है । मनुष्य ने इसका विरोध ही किया है । व हम भी उसी प्रकार के मनुष्य हैं । महापुरुष आते हैं व हमें जगाते हैं । कबीर साहब कहते हैं कि मैंने पुकार पुकार कर यह कहा पर कोई नहीं माना । गुरुदेव और लाला जी महाराज को भी निराशा ही हुई है एक भी ऐसा नहीं बन सका जैसा कि वे चाहते थे । उस निराशा के जिम्मेदार कौन है ? मैं व आप सब ।

कोई ऐसा शब्द कह गया हूँ जो आपको अच्छा न लगा हो उस हेतु मैं क्षमा चाहता हूँ ।

(७)

अच्छाई-बुराई से मन को स्वतंत्र करो

सिकंद्राबाद, १८-५-८४ प्रातः

हमें यह देखते रहना है कि क्या हम निरंतर सत्यता में चल रहे हैं ? सच बोलना और सत्यता में ही रहना दो भिन्न भिन्न बातें हैं । सच बोलना तो सरल है परंतु सच में रहना, आत्मस्थित रहना, परमात्मा के चरणों में रहना, प्रभु के स्मरण में रहना, उस आयाम में रहना जहाँ कोई अपेक्षा नहीं, यह 'सत्य' हैं । जो परिवर्तनशील बातें हैं वे सब असत्य हैं । तो क्या सत्य की दुनिया में हम अपने आप को पाते हैं ? कोई दावे से नहीं कह सकता है । भीतर में इच्छाएं हैं । अच्छी इच्छाएं भी हैं यानी सबसे उत्तम इच्छा परमात्मा से मिलने की है । हमारी कोई बुराई करता है तो बर्दाश्त नहीं होता है । कोई हमारी प्रिय वस्तु चुरा कर ले जाता है तो हम उसका पीछा करते हैं । कानून के दरवाजे खटखटाते हैं । परन्तु हजरत ईसा कहते है-- कि बुराई का अवरोध न करें । आपका सामान कोई चोरी करके ले जा रहा है तो ठीक है ले जाने दो । आपको गालियां दे रहा है तो ठीक है देने दो । आप कहेंगे कि हम व्यवहार में ऐसा कैसे सकेंगे ? कैसे हम जी सकेंगे ? एक जमाने में सुना करते थे कि हमारे देश में भी रात में दरवाजे बंद नहीं किया करते थे । चोरियां नहीं हुआ करती थी । यह सत्य का गुण है आत्मा का गुण नहीं है । हजरत ईसा उस आयाम से बोल रहे हैं । उस पथ से बोल रहे हैं कि जहां कोई भय नहीं है । वो जो अतीत अवस्था है, निराकार अवस्था है, जहां कोई आकार नहीं, केवल आत्मा ही आत्मा है, सचखंड है, परलोक है (तीनों एक ही बात है) जहाँ कोई किसी भी तरह से बुराई नहीं करता है, न आँख से, न कान से, न मुँह से, न व्यवहार से, क्योंकि वो सब को व अपने आप को एक ही समझता है । वहां द्वैत नहीं है । वहां दुई नहीं है ।

सत्य के बाद वो अद्वैत का समय खत्म हो गया । द्वैत का समय शुरू हो गया । गुणों में फंस गए इसलिए हम धर्म संकट में पडे रहते हैं । बुरा काम करेंगे बुरा फल मिलेगा, अच्छा काम करेंगे अच्छा फल मिलेगा आदि । कलयुग कोई अच्छा काम तो करता नहीं, बुरे ही करते हैं । हम किसी भी रास्ते को अपना लेते हैं व फिर मन ही मन सोचते हैं कि अरे इसमें क्या रखा है । वैसे तो कोई भी सच्चा महापुरुष मिल जाए तो उनकी प्रसन्नता ही काफी है । उनकी

प्रसन्नता प्राप्ति के बाद हम कर्मों की दुनिया से निकल सकते हैं । इन गुण-अवगुणों से हम मुक्त हो सकते हैं । इसके लिए भी तैयारी करनी होगी । इसलिए संत संक्षेप में लिखते हैं कि केवल दो बातें की जाए भक्ति तथा साधना । भक्ति अनन्य भक्ति हो , निष्काम हो । कोई इच्छा न हो, केवल अपने इष्ट को, परमात्मा को, गुरु को प्रसन्न करना है । इस काम में हम अपना जीवन लुटा दे । सब कुछ बलिदान कर दें, सेवा करें, देखें कि हमारे इष्ट देव किस प्रकार खुश होते हैं । उनकी प्रसन्नता प्राप्त करें । भक्ति में मीरा जी का उदाहरण प्रसिद्ध है । चैतन्य महाप्रभु का उदाहरण देखें । तो भक्ति के कितने ही भाव हैं । विश्वास, श्रद्धा आदि । प्रहलाद जी का भी उदाहरण है । लालाजी (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) का वर्तमान काल में सबसे ऊँचा उदाहरण है । कुछ नहीं है, अपना शरीर भी नहीं, प्राण भी नहीं, मन भी नहीं, बुद्धि भी नहीं, प्रभु के चरणों की रज बने हुए हैं । एक मिनट भी अपने इष्ट के ख्याल से न हटे । यह अंतिम सिद्धि है । इसके साथ साथ साधना करें । साधना का अर्थ है समाधि में प्रवेश होना । अपने ईष्ट के चरणों की रज बनना । उसी रज की अनुभूति होना । साधना करते करते अपने अहम को खो देना और जिस आंतरिक स्थान पर अपने ईष्ट ने कहा है कि साधना करो, अपनी सूरत को इतना भीतर में प्रवेश कर दो कि अपने शरीर का होश न रहे, संकल्प विकल्प नहीं उठे । जितनी गहरी सूरत भीतर में प्रवेश करेगी उतना ही ध्यान जाएगा । डीप मेडिटेशन (Deep Meditation) गहरी समाधि । उपर उपर स्तर पर नहीं, जहाँ भीतर में मन लय हो जाए । संकल्प विकल्प रहे ही नहीं केवल आत्मा की या परमात्मा की अनुभूति हो । जब इस आयाम पर पहुंच जाएंगे तो भीतर बुराई भलाई दोनों गायब हो जाएंगे । जब तक ये दोनों रहते हैं तब तक व्यक्ति कभी भी मुक्त नहीं हो सकता । यही बात अर्जुन को दुख दे रही है । मेरे चाचा ताऊ सब खड़े हैं । गुरुजन खड़े हैं । इनका वध करके क्या लूँगा । यदि मुझे परलोक भी मिल गया, मुझे राज भी मिल गया तो ऐसे राज का क्या महत्व है ? कोई बाप ताऊ चाचा को मार कर यह राज ले । भगवान को कह दूंगा कि ऐसा राज मुझे नहीं चाहिए । तो वो फंसे हैं बुराई भलाई की दलदल में । गीता आगे चलकर इसका विस्तार करती है कि अनहद शक्ति अनासक्ति हीं है । हम तो आसक्त हो रहे हैं, हम अनासक्त कैसे हो ? प्रत्येक बात से हमें अनासक्त होना है । अर्थात स्वतंत्र होना हैं, मुक्त होना है । वो चीज क्या है ? भगवान धीरे धीरे अर्जुन को समझाते चले जाते हैं । उस समय के जितने दर्शन थे या जितनी प्रकार की साधना थी पद्धतियां थी उनको धीरे धीरे समझाते समझाते आखिर में आ गए हैं कि सब धर्म छोड़ दे, कर्म, धर्म ही तो बुराई भलाई करते हैं । उन कर्मों धर्मों का कोई भी समय नहीं । वे

कब छूटते हैं जब भीतर में अंतिम चेतना, आत्मिक चेतना आ जाती है । इससे पहले बुराई-भलाई छोड़ेगा वह धोखा है । तो पहले सदाचार को अपनाना चाहिए । ये नींव है । प्रथम इसी को पकड़े रहिये, फिर साधना करें और अनुभूति की ओर बढ़े । ज्ञान, प्रेम सब कुछ आने के बाद, आत्मा की अनुभूति होती है । चाहे गुरु करा दे भक्ति के परिणाम स्वरूप, परमात्मा करा दे, चाहे आप कर ले, परन्तु वो अनुभूति निरंतर नहीं रहेगी । फंसे रहेंगे नामदेव की तरह । वो रोज प्रभु से बातें करते थे । उसी में अटक गए । संत ज्ञानेश्वर जी जब यात्रा पर चले तब उनसे भी बोले कि चलो । वे बोले कि मैं तो नहीं जा सकता । भगवान रोज बातें करते हैं मेरे से, मैं कैसे द्वारका चलूं । वे बोले यह ठीक है उनसे पूछले लो । वे अगर आज्ञा दे तो जरूर चलें । बड़ी निष्ठा थी, बड़े अनन्य भक्त थे । नामदेव जी ने पूछा तो भगवान ने क्या कहा ? कहा कि मुझे क्यों पकड़े हो । पकड़ को कहते हैं आसक्ति । चले जाओ और घूमों और देखो कि मैं कहाँ नहीं हूँ । तब उनको ज्ञान हुआ है । तब जाकर वे निकले हैं और अनुभव किया है कि सभी जगह तो भगवान है । यह अनुभूति कब होती है ? जब व्यक्ति इस मन से स्वतंत्र हो जाता है । इस बुराई-भलाई से छूट जाता है । अच्छा बुरा ये सब अपेक्षित शब्द है । सब मन के शब्द हैं । अहंकार के शब्द हैं । तो भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाया है, फिर विराट रूप में दर्शन दिए हैं । हालांकि यह यह उच्च कोटि का मन का रूप है । क्योंकि आत्मा का तो कोई रूप नहीं । उसे समझाया है कि पिछले जन्म में तुम क्या थे अब क्या हो ? यह सब मन का वह कर्मों के फल का एक रूप बतलाया है । वो आत्मा का रूप नहीं है । आत्मा का रूप पूज्य लाला जी महाराज को बतलाया तथा पूज्य लाला जी महाराज ने पूज्य गुरुदेव को लाल मंदिर चादनी चौक में अनुभव कराया । चारो ओर प्रकाश ही प्रकाश है कोई रोक नहीं केवल प्रकाश ही प्रकाश है, आनंद ही आनंद है । कोई अपेक्षा नहीं, कोई बुराई नहीं, कोई भलाई नहीं । एक ही है, मैं व तू नहीं है । जहाँ मैं है वहाँ तू हो जाता है । तो भगवान समझा रहे हैं कि यह बुराई भलाई मन का ही, अहंकार का ही रूप है । इससे मुक्त हो, हम कब मुक्त होंगे ? जब हमें आत्मा में डुबकी लगाते लगाते आत्मस्थित हो जाएंगे । उससे पहले नहीं । एक दिन में नहीं होगा, निरंतर उस अवस्था में रहना है । भीष्म भी छह महीने तीरों की सेज पर लेटे रहे । कहा है, शुक्ल पक्ष नहीं आया । वो कर्म धर्म में फंसे हुए हैं । मरते वक्त तक फंसे हुए हैं, छूटे नहीं । वो परलोक में भले ही गए हो परंतु कर्मों के बंधन से नहीं छूटे हैं । पांडवों को ही लीजिये । यह तो स्पष्ट है कि पांचों भाई परलोक की तरफ बढ़े हैं तो केवल युधिष्ठिर को हीं स्वर्ग में प्रवेश मिला है । बाकी भाइयों को नहीं । इतना उपदेश, इतनी भगवान

की कृपा, परन्तु वो कर्म बंधन से छूटे नहीं । केवल युधिष्ठिर जी को हीं स्वर्ग मिला है । कहीं भी नहीं लिखा है कि मोक्ष मिली हैं । तो फिर इन बातों में नहीं पड़ना है । हमें तो वास्तविकता देखनी है । हम गहरी नींद में सोते हैं तो क्या होता है ? कुछ नहीं होता ,। इसी तरह की यह अवस्था महर्षि रमण को आती थी । वह अवस्था हो जाती है तो मन विचार उठाना भी चाहेगा तो बड़ी मुश्किल से उठेंगे । आत्मा व परमात्मा एक है । न बुराई है, न भलाई है । जहां बुराई नहीं है, भलाई नहीं है, कर्म नहीं है, कोई बंधन नहीं है, वही मोक्ष है । वही गुरु का रूप है । वही आपका अपना रूप है । वो आत्मा आपके भीतर में है । हम स्वयं ही रेशम के कीड़े की तरह अपने आपको बांधते रहते हैं ।

मैं कह रहा था कि हजरत ईसा कहते हैं कि बुराई का विरोध न करो । साधारण व्यक्ति तो करेगा, इसमें कोई विचित्र बात नहीं । परन्तु हजरत ईसा कैसे कर सकते हैं ? फांसी पर चढ़े हुए हैं, चोर उनके पास खड़ा है और वे कहते हैं बेटे चिंता मत करो । अगर मेरी मोक्ष होगी तो तुम्हारी भी होगी । वो कह सकते हैं, । जीसस क्राइस्ट बने । कब क्राइस्ट बने जब इस अवस्था में आ गए । यानि वो सर्वव्यापक हो गए । वो क्रिश्चन बन गए । इनके भी दो बाइबिल है, पहले में यह दिखाया गया है कि ईंट का जवाब पत्थर से दो । दूसरे में यह समझाया गया कि प्रेम व ग्रेस यानी ईश्वर की दया से काम लो । इस दया व कृपा का कौन सा रूप है । वो आत्मा का रूप है । आपके भीतर में भी आत्मा की जागृति हो जाती है । तो यह प्रेम और क्षमा व दया के गुण अपने आप उत्पन्न हो जाएंगे । आप स्वयं भी दया रूप, क्षमा रूप, मोक्ष रूप हो जाएंगे । हजरत ईसा सैकड़ों हजारो आदमियों के रोग दूर करते थे । स्पष्ट हो चुका है कि वो कई तांत्रिक विद्या नहीं सीखे थे । प्रेम, वह भी आंतरिक हो तब हीं यह हालत होगी । इसे भगवती प्रसादी कहते हैं । वो पूर्णतया ईश्वर में लय हो जाते हैं । उनको कुछ करने की जरूरत नहीं होती । लोग अप्रयास ही उनके पास खींचे चले आते थे । जैसे सूर्य के धूप में व्यक्ति जाता है तो उसको अप्रयास हीं गर्मी मिलती है । उनके पास जो भी रोगी जाता था वह रोगमुक्त हो जाता था । यह आत्मा का एक गुण है कि कोई रोग रह ही नहीं सकता-- चाहे वो मानसिक रोग हो, या शारीरिक रोग हो या आर्थिक कठिनाई हो । बड़ा स्पष्ट लिखा है व उन्होंने वैज्ञानिक तरीके से समझाया है । इसी आयाम में हम सबको प्रवेश करना है ।

भक्ति व साधना दोनों ही मुख्य बातें हैं जो हमारे सामने होनी चाहिए । हमारे सामने रहनी चाहिए गुरु की प्रसन्नता । प्रसन्नता मांगती है सिर । हम यह चाहते है कि पेड़ से लगा मोक्ष हमें तत्काल अप्रयास ही मिल जाये । ऐसे नहीं हो सकता । उस प्रसन्नता की प्राप्ति के लिए हमें अपना सिर देना होगा ।

जो तो ही प्रेम करन को चाव ।
सिर धर तली गली मोरी आव ॥

मेरी गली में आना है तो अपने हाथ में अपना सर रख के आ । प्रेम का घर है खाला का घर नहीं । सब कुछ भूल जाए । जितने कर्म हो निष्काम भाव से करें । यह कठिन है कि हम एक ही जन्म में सिर काट कर रख दें यानी जीते जी मर जाये, परन्तु भरसक प्रयत्न तो करें । गुरु नहीं मरता है । उसकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करें । वह आपके पास है, आपके भीतर है । आपके अंदर है । भगवान कहते हैं कि गुरु व परमात्मा एक ही है और वो भी आपके भीतर में बैठा है । उसकी प्रसन्नता प्राप्त करो । वैसे तो अनेक प्रकार की साधना है । सब का सार है भक्ति जिसमें कोई मांग नहीं । केवल वैसा विश्वास होना चाहिए जैसा प्रहलाद जी का था । प्रहलाद जी ईश्वर रूप थे इसलिए उनको न आग सताती थी न पहाड़ से गिराए जाने पर कोई परेशानी होती थी । ऐसा तो स्वयं प्रभु ही कर सकते थे । यह बात पहले समझ में नहीं आई, अब आई है । वो तो आत्मस्वरूप थे । ये तो ईश्वर की लीला थी कि बच्चे के रूप में भगवान स्वयं आए हैं व संसार को प्रेरणा दी है कि ईश्वर में विश्वास इस तरीके का होना चाहिए । जैसे माता पिता बच्चों को दुःख नहीं देते उसी प्रकार ईश्वर भी उनको कोई दुःख नहीं देना चाहता । लोग बाग कहते हैं देखो साहब वहां यह हो रहा है वहां यह हो रहा है प्रभु बड़ा अन्याय कर रहे हैं । यह सब कब कहते हैं जब हम मन के स्थान पर होते हैं । अहंकार के स्थान पर होते हैं । यदि आत्मा के स्थान पर जाकर यह शब्द हम निकालना चाहें तो निकालेंगे ही नहीं । यह सब हमारे कर्म ही है जो फलीभूत होते हैं । उन्हीं का वह फल है । हम हीं दोषी हैं । कोई भी बात हमारे परिवार में होती है, हमारे देश में होती है, हमारे समाज में होती है, उसके लिए हम स्वयं दोषी हैं । और हम दोषी बने रहेंगे जब तक अहंकार के स्थान पर है । जब आत्मा के स्थान पर आ जाएंगे तो आपका लगेगा कि इसको कोई बुराई नहीं है । सब ईश्वर की लीला है, भगवान के लीला है । वो स्वयं हीं बुरा कर रहा है व स्वयम हीं भला कर रहा है । बुराई भलाई कुछ है ही नहीं । उसके यह नाम हमने रख दिए हैं । वो तो ड्रामा है । जैसे आप सिनेमा में देखते हैं कोई आदमी ब्राह्मण है परन्तु शुद्र का पार्ट कर रहा है तो

क्या वह शूद्र का पार्ट करके शूद्र बन जाएगा ? नहीं, वह ब्राह्मण हीं रहेगा । इसी प्रकार ईश्वर अपने भक्त में भगवान की रास लीला करते हैं । संसार को प्रेम लीला सिखाते हैं । संसार को सिखाते हैं कि इश्वर की आज्ञा का पालन कैसे हो ? परंतु यह मन समझ ही नहीं पाता कि ईश्वर की आज्ञा क्या है । बड़ा कठिन है ईश्वर की आज्ञा को मानना । इसलिए गुरु किया जाता है । मन हमेशा धोखा देता है । हम गुरु की सच्ची सेवा करें । गुरु की सच्ची सेवा यही है कि उनके आदेशों का पालन करें । उनके आदेशों का पालन करें या भगवान कृष्ण की जो रासलीला है, उसमें मस्त रहें । यह जो बुराई-भलाई दिखाई देती है यह मन की है, आत्मा की नहीं है । वास्तव में आत्मा न तो ब्राह्मण है न शूद्र । यह ऊपर ऊपर मन ही खेल रहा है ।

आत्मा तो सबसे अलग और हीं कुछ है । यह बात धीरे धीरे समझ में आती है । जैसे जैसे हम गुरु के आदेश का पालन करते हैं, यही उनकी सेवा है । गुरु को पैसे की जरूरत नहीं है । उनको सम्मान की जरूरत नहीं है । उसको कोई हाथ पाँव की सेवा की जरूरत नहीं है । वो माँ की तरह चाहता है कि जो लोग इस रास्ते पर आ गए हैं उसका जीवन परिवर्तित हो जाए । ट्रांसफॉर्मेशन (मन का कायाकल्प) हो जाए । यह मन और बुद्धि अहंकार को छोड़ कर आत्म स्थित हो जाए । मोक्ष गति को प्राप्त हो जाए । सच्चे आनंद और सच्चे प्रेम की हकदार हो जाये । तो जब तक चेतना आत्ममय नहीं होती है तब तक धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहये । जैसे कि भगवान ने अर्जुन से कहा था । परंतु मोक्ष के लिए अपनी आत्मा को परमात्मा में लय करना होगा । जैसे हजरत ईसा और फरीद जी ने कहा है कि कोई तुम्हारी मार-पिटाई करें तो तुम उसकी उंगली भी मत छूना । बल्कि उसके घर जाकर बडे प्रेम से उसके पांव दबाना । हम तो बड़े सोचते रहते हैं कि कैसे हो यह सब, क्या करें ? वो कहते हैं कि ऐसा नहीं है । उनके घर जाकर उनकी सेवा प्रेम के साथ करो । ये फरीद जी जैसे उच्च कोटि के संत हीं कह सकते हैं, हम नहीं कर सकते हैं । यह दूसरी बात यह कि समाज के भी डर के मारे हम बुराई का बदला बुराई से ना दे । परन्तु हजरत ईसा कहते हैं कि यह अवरोध मन से ही नहीं होना चाहिए । हम चौबीसों घंटे बातें मन में सोचते रहते हैं बुराई-भलाई की । बुराई का ऐसा दमन करेंगे, भलाई को ऐसे पकड़ेंगे । वो कहते हैं कि बुराई करने वाले का बुरा, मन से हीं नहीं सोचना चाहिए । ऐसा कौन कर पायेगा । वह जो पवित्र व्यक्ति है । जिसका आत्मिक सूर्य भीतर से उदय हो गया है । जो परमात्मा से मिला हुआ है । उनके भीतर में उसके प्रति बुराई करने पर भी विचार नहीं उठता है कि मैं बदले में किसी की बुराई करूं । बड़ा कठिन है पर ऐसा हमें करना ही होगा । यह अवस्था हमारी क्यों नहीं होती है ? होगी, जरुर होगी, परंतु

समय लगेगा । वैसे भी नियम है कि विस्तार हो रहा है, सुधार सबका होगा परन्तु समय लग सकता है । समय की गति किसी अन्य प्राणी के हाथ नहीं होती । केवल मनुष्य का अधिकार है, वो आगे बढ़ सकता है या पीछे गिरे । यह उसके हाथ में है ।

आप सब लोग गुरु कृपा से कितने अच्छे रास्ते पर लगे हुए है । चल तो रहे हैं परंतु और तेजी से चलिए । उपर उपर की साधना करने से कोई लाभ नहीं होने का । आत्मा की अनुभूति होनी चाहिए और उसी अनुभूति की गहराई से हमारे पापों का नाश होगा, संस्कारों का विनाश होगा । हमें सच्चा सुख मिलेगा । हमें मोक्ष मिलेगा । हमे ईश्वर के दर्शन होंगे । ये भिन्न भिन्न तरीके कहने के हैं बाहर से । बात एक ही है । भक्ति भी करते चले जाइए मगर याद रखना चाहिए की साधना से भीतर की अनुभूति हो । मन स्थिर हो जाए, संकल्प विकल्प खत्म हो जाये । सूरत गुरु के चरणों में लय हो जाय, अपना अस्तित्व खत्म हो जाये ।ॐ॥

अन्तस्तल को सुन्दर बनाओ

मोदी पूरम, दि० १२-६-१९८४

जे सो चंदा उगवै, सूरज चढै हजार ।

एतें चांदना होयगा , गुरु बिन घोर अंधार ॥

पद- धन धन हमारे भाग , घर आया पीर मेरा ।

सोहे बंक दुवार , सगला वन हरा ॥

हरहरा स्वामी सुखै गामी, आनन्द मन्दर रस धना ॥१॥

नवल नव तन नांव बाला, कवन रसना गुण बणा ॥२॥

मेरी सेज सोहि देखि मोहि, सगल सहसा दुःख हरा ॥३॥

नानक पें अम्पे मेरी आसपूरी , मिलै स्वामी अपरम्परा ॥४॥

यह अवस्था बताई है जब प्रभु रूपी पति हृदय रूपी मन्दिर में प्रवेश करते हैं तो पत्नी अर्थात जिज्ञासु की अवस्था उस वक्त क्या हो जाती है । यह अवस्था हमारी क्यों नहीं होती अर्थात भीतर में किसी प्रकार के संशय नही रहते । किसी प्रकार की दुविधा नहीं रहती । कोई राग द्वेष नहीं रहता । आनन्द हीं आनन्द है, प्रेम हीं प्रेम है । चारो ओर सुन्दरता हीं सुन्दरता है, बाहर भी सुन्दरता है । जैसे त्योहारों पर आप खुशियाँ मनाती हैं । इसी प्रकार गुरुदेव यह भीतर का आनन्द वर्णन कर रहे है । अपने शरीर, अपने मन की सुध-बुध रहती हीं नहीं । जहां द्वैत है, मैं व तू है वहां सुख हो सकता है आनन्द नहीं । वह तो पूर्णता में है । पूर्णता क्यों नहीं होती कितने बरस हो गये गुरुदेव के चरणों में रहते, साधना करते । कहाँ कमी है । हमारे पति भी घर के बाहर खड़े प्रतीक्षा में हैं कि हम भी उनके लिए सुंदर सा आसन बिछायें । उस हृदय के अंदर सुन्दरता बसायें उसे पवित्र करें ताकि वातावरण ऐसा हो कि प्रीतम आ विराजें ।

परन्तु देर क्या है ? क्यों नहीं हमारे में भी सुन्दरता, प्रेम आता ? रूखापन क्यों है ? प्रभु को यह अवगुण पसंद नहीं है । भक्ति अर्थात साधना (किसी प्रकार की क्यों न हो) करते हो, हो सकता है उसमें किसी को आनन्द मिलता है, यह व्यक्तिगत है । आपके सम्बन्ध हैं परिवार के साथ, आपके सम्बन्ध हैं समाज के साथ । आपके सम्बन्ध हैं समस्त देश व विश्व के साथ । मैं अपने शरीर को खुबसूरत रख सकता हूँ, खूब साबुन लवैंडर आदि लगा सकता हूँ । परन्तु यह बाहर की सुन्दरता है इससे मन संतुष्ट नहीं होता, यह भीतर की सुन्दरता चाहता है । बिछुड़ा हुआ है युग युगांतर से अपने पति के दामन से । वृत्ति है प्रत्येक मनुष्य की कि वह उसी पति से जा मिले, वह उसका दामन थम ले । परन्तु भीतर में रूखापन है । कोई रस नहीं आनन्द नहीं । साधना करते है विचार आते हैं, दोष देते हैं साधना को, गुरु को, अपनी परिस्थितियों को, अपने भाग्य को । परन्तु भीतर की सुन्दरता तभी आएगी जब हम दो चार बैटन का ख्याल रखेंगे ।

पहले अहंकार ममता या 'हूँ' 'मैं' या मेरा का त्याग करेंगे । भक्ति में रस न आने का यही कारण है । यह मुख्य है 'मैं' अपने शरीर का अहंकार है । इसे सँवारते हैं । बाहरमुखी वृत्ति है इसकी । बाहरी सँवार पर जितना समय लगाते हैं उतना भीतर में नहीं लगाते । भीतर की सफाई में समय लगाते तो जो मन है साफ़ क्यों नहीं होता । किसी को बुरा नहीं मनाना चाहिए । यह मुझमें भी है । सब मिलाकर यह जो शत्रु हैं इसके कई रूप हमारे साहित्यकारों ने, हमारे ऋषियों ने बनाए । जैसे रावण के सर पर दस या ग्यारह सर लगा दिए । यह काम क्रोध लोभ मोह जितनी भी बातें हैं सब इसी की संतान हैं और यह अहंकार का पुत्र है अज्ञान का । यह अज्ञान नहीं है कि पढ़े लिखे नहीं हैं या मूढ है या कॉलेज में नहीं पढे है या जिनको शहर की सभ्यता नहीं है । अज्ञानी वो है जो धन भीतर में हैं (परमात्मा भीतर में है) वह भूला हुआ है । यह ज्ञान होते हुए अज्ञानी है । हम सब जानते हैं वह भीतर में व हमारे बहुत हीं करीब है पर हमारे व्यवहार से हम उससे कोसों दूर हैं । दूर रह जाते हैं यही कारण है हमारे अभावों का, रस के अभाव का, आत्मा के आनंद के अभाव का । शास्त्र में इसी को अज्ञान कहते हैं । अज्ञान के कारण यह अहंकार है । अहंकार के कारण 'मैं' वह 'मेरापन' इसमें फंसे हैं । जैसे कोई अच्छे शब्द कहता है तो उसको मित्र मानते हैं तथा प्रतिकूल कह जाते हैं उसे शत्रु । किसको यह चोट लगती है भीतर में । वह कौन सा अस्तित्व है जिसे यह चोट लगती है । इस चोट के कारण, इस घाव के कारण, हम दिन प्रतिदिन अशांति बढ़ाते रहते हैं । वो मूर्ख और कोई नहीं हमारा अहंकार है । इससे छोटा बड़ा कठिन है । पर जब तक यह नहीं छूटता है शांति पाना

कठिन है । हमें भी व हमारे साथ जो परिवार में हैं या हमारे मित्र हैं उन्हें भी । जो हमारी बिरादरी है जिससे हमारे व्यवहार पड़ता है स्वयं भी दुखी होते हैं व उनको भी दुखी करते हैं । इस समय कुछ उपद्रव हो रहे हैं सारे विश्व में, यह नहीं कि केवल हमारे हिंदुस्तान में ही हो रहे हैं । अभी परसों की खबर है, हमारे बॉर्डर पर ब्रह्मा देश में कुछ लोगों में आपस में शत्रुता थी । तीन सौ आदमियों को थोड़े ही समय में मार दिया और बड़ी खुशियां मनाई । जिन्हें कत्ल किया गया था उनके मित्रों को पता चला तो उन्होंने भी उनके ४० आदमी को सरेआम कत्ल कर दिया । हमारी रामायण व महाभारत के युद्ध, हमारे देश में या बाहर में जितने भी उपद्रव हुए हैं या दोष देखते हैं हम अपने परिवारों में लड़ाई झगड़ा वो सब इस अहंकार के कारण हैं । साधना में भक्ति में कोई बाधा डालता है तो यही मन है । बाधा का मतलब है भक्ति में रस व आनंद नहीं लेने देता । इसके कई रूप हैं स्थूल रूप है, सूक्ष्म रूप हैं, कारण रूप हैं, जैसे हमारे चित् पर एक तो संस्कार कहते हैं वे चेतन व अचेतन रूप में रहते हैं । कभी कभी बड़ी अच्छी तरह ध्यान लगता है कि कुछ विचार आया व वह ध्यान नष्ट हुआ, हमारा ख्याल हट गया । यह चीज कहाँ से आई । हमारे भीतर में विचार छुपे पड़े थे । थोड़े से संस्कार हैं जो चेतन अवस्था में है या ऊपर ऊपर हैं । क्योंकि हम में जन्म जन्मान्तर के कई संस्कार हैं । जब भीतर ऐसी परिस्थितियां आती हैं तो ये जागृत हो उठते हैं । तो साधना में हम प्रभु से शक्ति लेकर अपने मन को एकाग्र करें । आत्मा से शक्ति लेकर इन संस्कारों से मुक्त होने का प्रयास करते हैं । जो संतुष्ट हैं अपने अवगुणों के प्रति कि सत्संग में जाने से स्वतः ठीक हो जाएंगे यह ढीलापन यहाँ नहीं चलेगा । गुरु महाराज का आदेश था कि स्व निरीक्षण करना चाहिए । अपनी कमजोरियों को, त्रुटियों को देखना चाहिए । एक पूरा प्रवचन है इस पर । तो सब त्रुटियों में जो बड़ी त्रुटी है वह है अहंकार । यह न अपने को सुखी रहने देता न दूसरे को । जैसे जंगल में एक चिंगारी लगी कि सारा जंगल नष्ट हो गया । इसी तरह से इसे किसी ने कोई बात कह दी तो हमारे भीतर में जितनी भी शांति थी या जो भी कुछ हमारा अस्तित्व था, वह जलने लगता है । तो यह मिटे कैसे ? एक हीं रास्ता है अपने प्रतीक्षारत पिव को बुलाने के लिए प्रेम करो । प्रेम का पहला साधन है । अपने आप को निछावर कर दो, बलिदान कर दो । किसी चीज का बलिदान ? अपने अहंकार का । यह नहीं कि कुछ पैसा भेंट चढ़ा दो या प्रसाद चढ़ा दो । इससे कुछ नहीं होगा । मानव बड़ा बुद्धिजीवी हैं । मुसलमान भाई जिस प्रतीक स्वरूप बकरा काटते हैं उस बाबत हजरत इब्राहिम ने कहा था कि अपने बचचे का बलिदान दो अर्थात जहाँ जहाँ वृत्ति फंसी है वहाँ से निकालो । होना क्या था, करते क्या है । इस अहंकार त्याग की बजाय

मुसलमान भाई बकरा चढ़ाते हैं । इसी तरह हम लोग भी । यहां राजस्थान में एक देवी का मंदिर हैं । बहुत दुनिया जाती है और हम नारियल वहां दूर से माता के चरणों में फेंकते हैं । नारियल आप देखेंगे तो उसमें दो आँखें सी लगती है । एक मुंह सा लगता है । इस रूप में हम अपने आप को हमारे अस्तित्व को भेंट करते हैं । इन बातों से कुछ नहीं होने का । गुरु क्यों किया जाता है । जिन्दा गुरु की क्याजरूरत है । वैसे तो दक्षिण में शिव को आदि गुरु मानते हैं । परमात्मा को कहीं कहीं हमारे शास्त्रों में शिव के रूप में वर्णन किया है । तो जिंदा गुरु क्या जरूरत है ? निराकार निर्गुण स्वरूप को हम अपने आपको समर्पण नहीं कर सकते है । जिंदा मूर्ति को यह समर्पण करना आसान है । परंतु हम समझते हैं कि गुरु देख नहीं रहा । चोरी कर लो, किसी का शोषण कर लो, बस इतना ही काफी है कि सुबह सायं साधन कर लिया । तो जिंदा गुरु हमको कान पकड़ के बताता है कि ऐ मूर्ख तुम क्या कर रहे हो और वह आपसे पहले वस्तु मांगता है वह यह है कि अहंकार की भेंट लाओ । जहाँ जहाँ मन फंसा है उन वस्तुओ को मेरे चरणों में कर दो । इंसान पैसा दे सकता है, इस तन से सेवा कर सकता है और सब कुछ कर सकता है परन्तु यह अहंकार नहीं छोड पाता, मन नहीं दे पाता । महापुरुष पहले बहुत परीक्षा लेते थे । देखिए धर्मदास जी को कबीर दासजी ने दीक्षा नहीं दी, शरण तक नहीं लिया । जब तक कि उन्होंने सब कुछ नहीं दे दिया । करोड़पति हैं, भारत का सबसे बड़ा धनी है, सब पैसा दे दिया, शरीर दे दिया परन्तु कबीर साहब को संतुष्टि नहीं हुई । कहा कि फलां सेठ के पास जाओ उससे भिक्षा लेकर आओ । पुराने जमाने में भी, व आजकल भी संन्यासी लोग भिक्षा दो चार घरों से लाते हैं । मिल गई तो ठीक है वरना छोड़ दिया । तो धर्मदास जी से कहा है कि उस सेठ से भिक्षा लेकर आओ जिससे कि उसकी आपस में शत्रुता थी । दोनों एक दूसरे के कत्ल को तैयार थे । धर्मदास जी सोचने लगे, “मैं उसके पास जाऊं, वो तो मेरी जान ले लेगा” । वो तो मेरा शत्रु है । जो हमसे प्यार करते हैं उससे प्रेम रखना तो बड़ा आसान बात है परन्तु जो हम से घृणा करें, शत्रुता करें, वह भी अकारण, तब भी हम उससे प्रेम करें तब तो हम सत्संगी हैं वरना नहीं । वह काहे का दीक्षित है । आप बुरा नहीं माने वह दीक्षित नहीं है । अभी आपने पत्रों में पढ़ा होगा पोप जो कि ईसाइयों में रूहानियत के बादशाह माने जाते हैं । संसारी बादशाहों की जितनी इज्ज़त नहीं होती उससे अधिक पोप की होती है । किसी जमाने में तो बहुत हीं होती थी । अब भी वह बादशाहों से कम नहीं है । इनकी जान लेने के लिए एक व्यक्ति ने हमला किया, इनको चोट आई । परंतु जब इनको यह पता चला कि उसकी ट्रायल होकर मुकदमा बनकर कैद हो गई है । तो वहाँ जेल में गए हैं

और उससे मिलकर जिस हाथ से उस व्यक्ति ने गोली चलाई थी उसको चुमा,है । प्यार दिया है । धीरज बंधाया कि तुमने यह गलती नहीं की । ये तेरे संस्कार थे । पाप से घृणा करो, पापी से नहीं । वो करें क्या बेचारा, वो कंट्रोल नहीं कर पाता । क्या हम अपने आपको कर पाते हैं । ऐसी भूलें, हमसे हो जाती हैं । पीछे हम देखते हैं कि हम तो बड़े बेवकूफ थे । बड़े नादान हैं अब भी । इतनी उम्र होने आई अब भी यह अवस्था है । यानी मन व इन्द्रियाँ इतने दुर्बल हो जाते हैं कि हम बुराई न चाहते हुए भी कर जाते हैं । तो जिसके भीतर में अहंकार है, दीनता नहीं, ईश्वर के साथ, गुरु के साथ प्रेम नही, वह दूसरे को क्षमा नहीं कर सकता है । इससे वह खुद का नुकसान अधिक करता है । उसी प्रकार जैसे कि अग्नि बुझ जाती है परंतु उपले की आग भीतर में दबी रहती है । क्रोध के बाद व्यक्ति को भीतर में देखें क्या होता है ? आप पानी पीते हैं, ठंडी चीजें खाते हैं परंतु भीतर की अग्नि शांत नहीं होती । कई बार तो कई दिन लग जाते हैं इस घाव को ठीक करते । तो साधक को सोचना चाहिए साधना में रस क्यों नहीं आता है ? इसका मुख्य कारण है अहंकार । इसी के कारण वह निंदा करता है, घृणा करता है, शत्रुता करता है, शोषण करता है । आगे चलकर ये काम क्रोध लोभ मोह सब उसी की संताने हैं । तो गुरु से या ईश्वर से प्रेम करना है । दीक्षा लेते में हमने कहा है कि तन-मन-धन आपका है । यह धोखा किया है गुरु व अपने आप से । इस अहंकार के कारण जो हमारा धर्म है, कर्तव्य है उससे भी गिर जाते हैं । सब सोचते हैं कि मैं जो करता हूं यही ठीक है । खांमखां अखड़पन आ जाता है, क्रोधित होता है व सोचता है कि जो मैं सोचता हूँ वही सही है । किसी की बात मानने में उसे दुःख होता है । यही बात उसको कही जाए तो उसको मानने में भी दुःख होता है । क्यों ? अहंकार को चोट लगती है । तो गुरु के साथ स्नेह करें । मतलब क्या है कि उसकी कही हुई बात को माने । बताए गए नियम अपनाएं । दीनता गरीबी होनी चाहिए । 'मैं' , 'मेरा' नहीं होना चाहिए, तब कहीं जा कर, हृदय मंदिर बनेगा, तब कहीं जाकर उसमें प्रभु बसेंगे । बाहर से मंदिर में नाद है, भीतर भी नाद बजेगा । एक संगीत होगा, एक ध्वनि उठेगी, चुपके, ध्वनि मौन की ध्वनि । जीवा मुक हो जाएगी । वो आनंद वर्णन नहीं होगा । वो एक गंगा बहेगी, प्रवाह बहेगा, आनंद का । शिव गंगा बहेगी, हम स्रोत बन जाएंगे आनंद के । उस गंगा से, अपने भीतर, परिवार, समूह, देश फिर विश्व में विस्तार करेंगे । प्रेम करेंगे । एक महापुरुष की सेवा में गए । वो बोले मैं चाहता हूँ आपका आलिंगन करूँ पर समाज ऐसा करने में विवशता बताता है । आप सबके पाँव छुऊँ । पागलपन सा भीतर में उत्पन्न हो रहा है । गंगा निकलती है, गंगा उमड़ती है, तब यही अवस्था होती है । जो दुखी है उसको पिलाऊँ । जो

प्यासे हैं उनको पिलाऊँ । जो नंगे हैं उनका शरीर ढकुं । यही महात्मा बुद्ध की अवस्था थी । जिसे हम ज्ञान व प्रेम, पृथक-प्रथक नहीं है, लोग भूले हुए हैं । साधना आँख बंद करना ही मानते है ना भाई । गुरु, भगवान के आदेश के अनुसार हमारा सुबह से लेकर शाम तक जो जीवन हो वह साधना रूप हों और यह अवस्था को प्राप्त हो जाये अर्थात चाहें तो मौका भी है, अनुकूल परिस्थितियों में शोषण कर सकते हैं, रुपये पैसा हमारे पास है, पर भीतर में प्रेम की गंगा उमड़ती रहेगी तो वह यह सब करने नहीं देगी । हम सब पाप करते हैं । जब यह अवस्था, दीनता, प्रेम आ जाएगा तो क्या किसी का शोषण होगा ? हम उस पति के द्वार पर गिर पड़ेंगे । ऐसे आप पकड़ेंगे तो वो छोड़ेंगे नहीं । आप आलिंगन कर लीजिये मालिक गले लगा लीजिये । प्रभु हमारे गुनाहों को नहीं देखते, वो बकशंद है हमारे गुनाहों को बख्शेंगे । साधारण बकशंद नहीं, सदबकशंद । हमेशा हमेशा की सेवा करते हैं, कब ? जब हम अहंकार को छोड़, दीन, गरीब बनकर उनके चरणों में बैठते हैं ।

नीचों नीच नीच अति नाना, होए गरीब गुलाम ।"

इस प्रकार हम बुलाते हैं क्योंकि यह तो उनका विरद है सेवा करना ।

प्रभु के चरणों में गिरना तो आसान बात है, परन्तु जो उनके भिन्न रूप हैं, वे सभी तो प्रभु हैं । उन सब में ईश्वर के दर्शन करना । उनकी इस प्रकार से सेवा करना मानो साकार रूप में ईश्वर हमारे सामने हो । मानो हम ईश्वर की हीं सेवा कर रहे हों । यह सब हमें करना ही होगा यह पहली बात है ।

दूसरा अहंकार का रूप है, मोटी मोटी बातें करना । ईश्वर से पृथक रहना । इसके उदाहरण में धरती को लीजिये । उस पर खेती करते हैं, खूब बढ़िया फूल निकलते हैं । चादर सी बिछ जाती हैं । वो बडे ही अच्छे लगते हैं । कवि रचनाएं करता हैं, जिज्ञासु सुन्दरता देख विस्माद में चला जाता है । चरणों के समीप हो जाता है । ऐसे सुन्दर पुष्प ले चरणों में अर्पित करता है । परन्तु जैसे हीं ये पुष्पलताएं धरती से पृथक होती है फिर एक दिन या दो चार दिन में उनकी सुंदरता बिगड़ने लगती है । उन सूखी सूखी लकड़ियों को फेंक देते हैं या जला देते हैं यही हालत हमारी होती हैं । हम वो टूटे हुए पिछड़े लकड़ी के घासपात है । दुनिया तो हमको जलाती है, हम स्वयं भी अपने आप को जलाते हैं । मन न लगने का मुख्य कारण यही है । स्रोत से दूर चले जाते हैं । आधार से दूर चले जाते हैं । 'मैं' , 'मेरे' के राग में अपने आपको भी दूषित करते हैं, संसार को भी । इसका आगे विस्तार होता है पराधिकार आदि, फिर

आता है कठोर वाणी का प्रयोग करना । आप किसी को भी तीर मार दो, दुःख नहीं होगा । परंतु आप के कडवे शब्दों से दूसरे को दुःख पहुंचेगा, उसका आप एहसास नहीं कर सकते । कड़वे शब्द तीर की तरह तो लगते ही हैं परन्तु ये तीर वापस आते हैं । अपने हृदय को दुखी करते हैं, हमारी साधना में बाधा डालते हैं । कहते हैं कि साहब उसने ऐसा कहा तब हो गया । साधक को ऐसा नहीं कहना है । जो सत्संगी है जिनका दूसरा आधार नहीं, उनको यह करना होगा । वाणी मधुर चाहिए हो सके तो आत्मा से निकले शब्द हो । तो वो मधुरता वो मिठास दूसरे को भी सुख देगी । उससे अधिक आपको सुख देगी । इसी तरह खा रहे हैं खूब उडा रहे हैं, कोई होश नहीं । दूसरे की निंदा सुन रहे हैं, बड़ा रस आ रहा है, बोल रहे हैं, चुगली कर रहे हैं । दूसरे के प्रति बुरे शब्द इस्तेमाल कर रहे हैं या सिनेमा आदि की गज़लें पढ़ रहे है । ये सब भोग जो है, जरूरत से अधिक भोग है, ये मनमुटाव कर देते हैं । भीतर पर्दा पैदा करते कर देते हैं, स्थूलता आ जाती है । जहां स्थूलता आ जाएगी, आत्मा का रस नहीं रहेगा, साधना का रस नहीं रहेगा ।

तीसरा है निंदा करना । यह भूल कर भी नहीं करनी चाहिए । अज्ञानी मनुष्य निंदा करता है । यह वास्तव में किस की होती है ? गुरु की होती है, ईश्वर की होती है । जब हम मानते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वग्य है तो किसकी निंदा होती है । ईश्वर की, परंतु पर निंदा सुनकर जो सुख उत्पन्न होता है वह स्थूलता उत्पन्न करता है । एक और आवरण आत्मा पर डाल देता है । जिसकी निंदा करते हैं, उससे घृणा करते हैं, द्वेष करते हैं । द्वैत भाव आ जाता है । जहां द्वैत भाव है, निंदा है, घृणा है, वहां तो पर्दा आ गया "आप व परमात्मा के बीच" वहाँ रस कहाँ से आएगा । साधना के बीच विचार आते हैं, ये कहाँ से आते हैं । ये हमारे अपने ही विचार है । हम जानते हैं । इन विचारों के बीज जान-बूझ कर डालते है । घृणा का बीज डाला है, आप उससे क्षमा मांगने को तैयार नहीं । उससे प्रेम करने को तैयार नहीं । उसको माफ करने को तैयार नहीं । तो उसके विचार तो आएंगे ही आपके मन में । यह एक ऐसा बीज है जिसकी खेती बड़ी तेजी से फैलती है । भीतर में एक बात होगी । उस एक बात के कई संबंध बन जाते हैं । यह मन कई संबंध बना लेता है । ऐसे जाल बिछा देता है कि आप उससे निकल हीं नहीं सकते, ऐसे जाल से या उसके बीच से । तो इन दो चार बातों का ध्यान रखना चाहिए । दीनता हो, दिखावटी नहीं, सच्ची । उस दीनता में ईश्वर प्रेम हो, उसमें मधुरता हो, सत्यता हो, सेवा का भाव हो । कोशिश करनी चाहिए कि पहले तो भीतर में व फिर परिवार में शांति हो । साधना कभी सफल नहीं हो सकती जब तक ये दो बातें सफल नहीं होती । चौथा

बाहर व्यवहार में औरों के साथ पवित्र रहे । तो व्यक्तिगत व पारिवारिक शांति अति आवश्यक है साधना के साथ । इसलिए कुछ लोग घर से बाहर चले जाते है । एकांत में चले जाते हैं । परन्तु उनको सफलता तब मिलती है जब उनका मन शांत हो जाता है । यदि वो घर से लड़ाई करके जाते हैं तो इसके बीज वहां भी जाते हैं और वो पागल हो जाते हैं । एकांत में साधना कठिन है । घर में तो मन को खिलौने भी बहुत हैं । उन में से कुछ भी दे दोगे परन्तु बाहर तो बहुत कठिन है । गुरु महाराज कहा करते थे कि ऐसे लोग बड़े दुखी होते हैं । बाहर जाकर कुछ लोग पागल हो जाते हैं । कुछ लोग जल्द ही वापस आ जाते हैं । कुछ लोग भाग जाते हैं । तो ईश्वर प्राप्ति या वास्तविक आनन्द प्राप्ति घर में ही है । इसलिए प्रत्येक सत्संगी को चाहिए कि अपने आपको इस तरह रखे कि उसके भीतर आनंद हीं आनंद हो । उसका परिवारिक जीवन भी सहयोग का हो । जहां सहयोग नहीं है वहां अशांति है । ईश्वर प्राप्ति की राह में परिवारिक जीवन भी सेवा का हो, सहयोग का हो । यह अति आवश्यक है । आप गुरु की सेवा करें न करें कोई बात नहीं । परिवारिक सदस्य एक दूसरे की सेवा करें, प्रेम करें । जब परिवार में शांति होगी तब आप देखेंगे पूजा का आनंद हीं और होगा । आप घर जाइए लड़कर दफ्तर में या दुकान पर तो वहां भी आप सबसे लड़ेंगे । इसी तरह परमात्मा के चरणों में जाने या गुरु के चरणों में जाने से पहले भीतर में शांति नहीं है तो वो तो नहीं मिलेगा । इसलिए कहा है पहले घर से शुरू करें । यह कहा गया है कि देह के मंदिर को सुंदर बनाए । विनोबा जी कहते हैं कि भीतर की प्रसन्नता से प्रभु की प्राप्ति हो जाती है । प्रसन्न कौन होगा ? जो तृप्त होगा । जिसके भीतर में संतोष होगा । जिसका व्यवहार सहयोग लिए हुए है । सहयोगी कौन है जो अपनी खुशी नहीं देखेगा, दूसरे का आराम, दूसरे की खुशी देखेगा । दूसरे को आराम देना, उसकी आशा पूर्ति हेतु अपना बलिदान दे देगा । यह कहना कि केवल घर की बहुए ही करे, गलत है । स्त्री-पुरुष, माता-पिता, सास-ससुर, बहु सभी में सहयोग होगा । यदि नहीं होता तो साधना नहीं बन सकती । किसी महापुरुष ने लिखा है कि शीतल चंदन का शरबत पी लीजिये, सारे शरीर पर लगा लीजिये । परन्तु भीतर में क्रोध है, द्वेष है, बदले की भावना है तो शांति नहीं मिलेगी । इसलिए बल दिया है गृहस्थाश्रम पर । आज से नहीं आदि काल से, इसका मुख्य कारण उस गृहस्थी परिवार का है जहाँ आपस में सहयोग हो । जहाँ तनाव है उससे बेहतर है घर से बाहर चले जाओ । वह गृहस्थाश्रम नहीं, वो तो अग्नि का आश्रम है, वहाँ तो केवल तुकाराम जी जैसे आदमी रह सकते हैं प्रत्येक नहीं ।

(फिर आपने फरमाया 'सीता बेटी तुम पढ़ो', तब सीता बहन ने यह पद पढ़ा)

शरण में आये हैं हम तुम्हारी, दया करो हे दयालु भगवान ।
सम्भालो बिगड़ी दशा हमारी, दया करो हे दयालु भगवन ॥
न हम में बल है न हम में बुद्धि, न हम में साधन न हम में शक्ति ।
तुम्हारे दर के हैं हम भिखारी, दया करो हे दयालु भगवन ॥१॥
जो तुम हो स्वामी तो हमें सेवक, जो तुम पिता हो तो हम हैं बालक ।
जो तुम हो ठाकुर तो हम पुजारी, दया करो है दयालु भगवान ॥२॥
सुना है हम हैं अंश तुम्हारे, तुम्ही हो सच्चे पिता हमारे ।
गर सच है तो फिर क्यों सुधि बिसारी, दया करो हे दयालु भगवन ॥३॥
जो हम भले हैं तो हैं तुम्हारे, जो हम बुरे हैं तो हैं तुम्हारे ।
तुम्हारे होकर भी हैं हम दुखारी, दया करो हे दयालु भगवन ॥४॥
न होगी जब तक दया की दृष्टि, न होगी जब तक कृपा की वृष्टि ।
नहीं कहाओगे न्यायकारी, दया करो हे दयालु भगवन ॥५॥
हमें तो बस टेक नाम की है, पुकार ये राधे श्याम की है ।
तुम्हारी तुम जानो निर्विकारी, दया करो हे दयालु भगवान ॥६॥

सागर के मोती

जो यह कहता है की मैं पैसा भी कमाऊं , नाम भी कमाऊं और परमात्मा के रस्ते पर भी चलूं , मुझे कोई कठिनाई न आये, कोई दुःख न आये, सुख हीं सुख मिलता रहे । ऐसा व्यक्ति सफल नहीं होता है ।

* * * * * * * * * * * * * *

हमारी कथनी , करनी और रहनी में बहुत कमियां हैं । जब हम मनन करेंगे तब हमें पता चलेगा । मनन भी तब होता है जब गुरु या ईश्वर के साथ प्रेम हो । नहीं तो मन कहता है, इसमें क्या बात है । मन कहता है यदि कोई बात तुमने गुरु की नहीं मानी तो क्या बुराई है इसमें ? मेरी भी तो इच्छा है, वह भी तो पूरी होनी चाहिए । मन ऐसे ऐसे ढोंग रचता है की दीनता इसमें आती हीं नहीं । एक नन्हा सा पौधा आंधी तूफान में झुक जाता है और बच जाता है और जो बड़ा वृक्ष होता है वह हठी होता है वह अड़ा रहता है और गिर जाता है । हमें नन्हे पौधे की तरह बनना है । दीनता में आनन्द है, प्रसन्नता है ।

* * * * * * * * * * * * * *

संतोष होना चाहिए । प्रयास करने के पश्चात भी यदि इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती तो ईश्वर की गति में अपनी गति मिला देनी चाहिए ।

* * * * * * * * * * * * * *

परम संत डॉ० करतार सिंह साहब